आजादी, समानता और भाईचारा

राजद समाचार

अंक - 13 मासिक अगस्त, 2022 सहयोग राशि - 40 रुपये

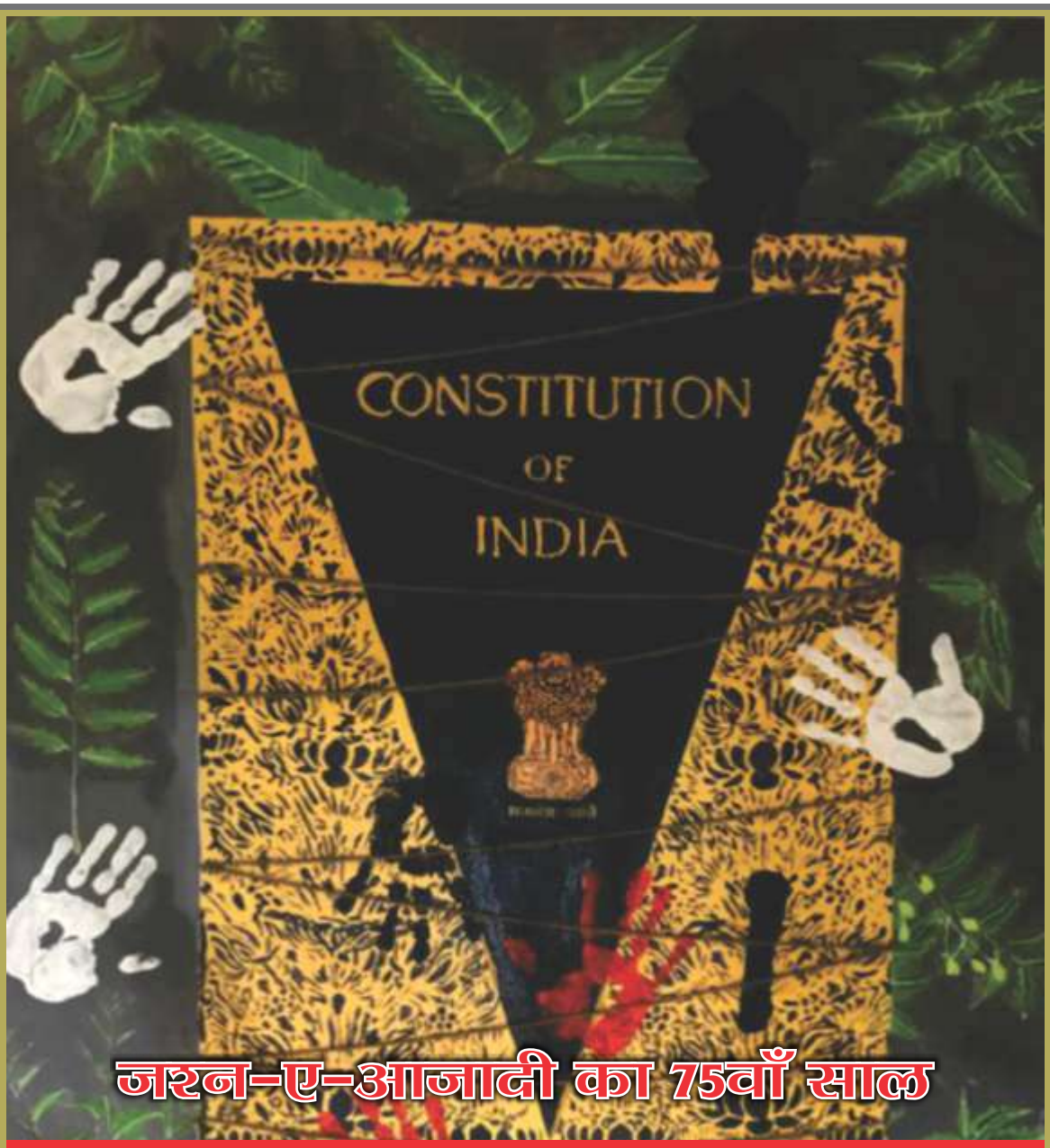

जश्न-ए-आजादी का 75वाँ साल

- महागठबंधन की नई सरकार, विपक्षी एकता का आगाज़
- 'अमृत' काल में विष
- जश्न-ए-आजादी एक विमर्श
- जंग-ए-आजादी के छुपे हीरे

किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है

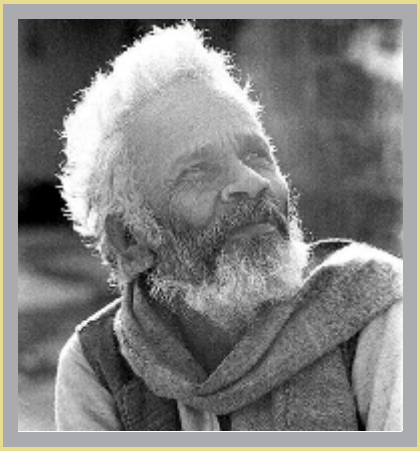

(30 जून, 1911 - 5 नवम्बर 1998)

नागार्जुन

किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है?
कौन यहां सुखी है, कौन यहां मस्त है?
सेठ है, शोषक है, नामी गला-काटू है
गालियां भी सुनता है, भारी थूक-चाटू है
चोर है, डाकू है, झूठा-मक्कार है
कातिल है, छलिया है, लुच्चा-लबार है
जैसे भी टिकट मिला, जहां भी टिकट मिला
शासन के घोड़े पर वह भी सवार है
उसी की जनवरी छब्बीस
उसी का पंद्रह अगस्त है
बाकी सब दुखी है, बाकी सब पस्त है!
किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है!
कौन यहां सुखी है, कौन यहां मस्त है!
सेठ ही सुखी है, सेठ ही मस्त है
मंत्री ही सुखी है, मंत्री ही मस्त है
उसी की है जनवरी, उसी का अगस्त है।

राजद समाचार

आजादी, समानता और भाईचारा

अंकः 13, अगस्त 2022

आवृत्तिः मासिक

सम्पादक

अरुण आनंद

सहयोग : कविजी

विशेष सहयोग

रामनरेश यादव

आवरण चित्र

रोहित कुमार गुप्ता

लेआउट एवं डिजाइन

मुकेश कुमार / उदय कुमार

जगदानन्द सिंह

प्रदेश अध्यक्ष, राष्ट्रीय जनता दल,
वीरचंद पटेल पथ, पटना–1 द्वारा
प्रकाशित एवं वितरित।

सम्पर्क : राष्ट्रीय जनता दल, 2 वीरचंद
पटेल पथ, पटना–800001
फोन : 0612.2506830

राष्ट्रीय जनता दल कार्यालय, बिहार
द्वारा आदेशित तथा यूनाईटेड प्रिंटर्स
एण्ड सर्विस प्रोभाइडर, सन्दलपुर,
पटना द्वारा मुद्रित।

इस बार

महागठबंधन की नई सरकारः विपक्षी एकता का आगाज – नरेश नदीम 03

'अमृत' काल में विष – प्रसन्न कुमार चौधरी 05

जश्न–ए–आजादी – एक विमर्श

बिहार अभी भी एक आंतरिक उपनिवेश – प्रकाश चंद्रायन 09

समाजवादी राजनीति ने जनतंत्र को जड़ों तक पहुंचाया – कमलेश वर्मा 10

दूसरी आस्थाओं के प्रति सद्भाव जरूरी – प्रीति सिन्हा 11

सामाजिक क्रांति अभी भी अधूरी है – आनंद बिहारी 13

आधारभूत बदलाव नहीं – राजू रंजन प्रसाद 14

बिहार में लोकतंत्र अधिक समावेशी – संजीव चंदन 14

कैसा अमृतकाल, जहां सच बोलना विषपान है – डॉ सीमा 15

राजनीतिक सशक्तीकरण, लेकिन समग्र विकास नहीं – मनोरमा 17

जंग–ए–आजादी के छुपे हीरे

बद्री अहीर : एक सुदूर चमकता सितारा–दुर्गेश कुमार 19

पीर अली खान : एक लेजेन्ड्री आइकन–मो. उमर अशरफ 22

केशरी राम : मगध के गुमनाम शहीद–अंगद किशोर 24

जुब्बा साहनी : अगस्त क्रांति के तरुण शहीद–रामनरेश यादव 28

रामफल मंडल : एक विस्मृत शहीद–आचार्य रामानंद मंडल 30

बहुरिया रामस्वरूप देवी– प्रियंका प्रियदर्शिनी 34

मुक्ति के मालाकार : नक्षत्र मालाकार–अरुण नारायण 37

न होते बत्तख तो गांधी युग भी न होता– डॉ. मो. आरिफ 40

सूरज नारायण सिंह : एक निर्भीक क्रांतिकारी– सत्यनारायण प्रसाद यादव 42

पार्टी गतिविधियां

महंगाई और साम्प्रदायिकता के खिलाफ प्रतिरोध मार्च–डॉ. दिनेश पाल 43

महागठबंधन की नई सरकार का मंत्रिमंडल 46

बिहार से भाजपा की उलटी गिनती शुरू

बिहार के एनडीए गठबंधन में मचे कोहराम का अंततः 9 अगस्त को पटाक्षेप हो गया जब नीतीश कुमार ने राज्यपाल को अपना इस्तीफा सौंप दिया और अगले ही दिन 10 अगस्त को पुनः मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ले ली। अब नई सरकार में राजद, कांग्रेस, हम और जदयू सीधे सरकार में शामिल है जबकि सीपीआई, सीपीएम, और सीपीआई (एम.एल) बाहर से समर्थन कर रही है। वहीं भाजपा अब विरोधी दल की भूमिका में आ गई है।

7 दलों के महागठबंधन और 164 विधायकों का समर्थन इस सरकार को प्राप्त है। इसमें एक निर्दलीय विधायक भी शामिल हैं। महागठबंधन में शामिल पार्टियां देश में सांप्रदायिकता रहित ऐसा समाज चाहती हैं जहां राज्य अपने कल्याणकारी स्वरूप में आम आदमी के हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता दे। जहां अमीरी–गरीबी और ऊंच–नीच की खाई पाटी जाए और नागरिकों को उनकी बुनियादी जरूरतें मुहैया कराई जाएं। जबकि भाजपा सांप्रदायिक जहर के सहारे अपने ही नागरिकों को खंड–खंड में विभाजित कर भारतीयता के मूल्यों में ही सेंधमारी कर उसे बर्बरतापूर्वक अंधकार काल में खींचना चाहती है। उनका एकमात्र एजेंडा भारत को हिन्दू राष्ट्र में बदलने का है। आम आदमी उनके शासन में जिस तरह की महंगाई, बेरोजगारी, असुरक्षा और वेवशी में पीस रहा है, उसमें उनका हिन्दू राष्ट्र पूरी तरह से तिरोहित होता हुआ उनके ही गले की फांस बनने वाला है।

नीतीश कुमार के एनडीए से अलग होने के गहरे निहितार्थ हैं। पूरे देश में और अभी हाल ही में महाराष्ट्र, झारखंड में जिस तरह निर्वाचित और स्थाई सरकारों को धराशायी करने का 'लोटस ऑपरेशन' अभियान भाजपा चला रही थी, उनका बिहार में धराशायी होना राजनैतिक तौर पर उनकी सबसे बड़ी पराजय है। 2024 के लिए वह जिस तरह की रणनीति पर काम कर रही थी, उसमें पूरे विपक्ष को ही लील जाना उनका मुख्य मकसद रह गया था। देश में एक अजीब किस्म का डरावना माहौल पैदा कर, हर उस असहमति में उठी आवाज को वे कभी ईडी का खौफ दिखलाकर तो कभी सीबीआई के माध्यम से खामोश कर दे रही थी। भारत की संसदीय राजनीति में इतना खौफनाक दौर कभी नहीं आया। लालू प्रसाद, सोनिया गांधी, ममता बनर्जी, चंद्रशेखर राव, हेमंत सोरेन सरीखे दर्जनों नेता इनके निशाने पर हैं। पता नहीं कब कौन गिरफ्तार हो जाएं और जेल की सीखचों में कैद कर लिये जाएं।

बिहार की घटना ने पूरे भारत के विपक्ष को मुखर कर दिया है। 2024 के लोकसभा चुनाव को यह अपने तरीके से प्रभावित करेगा। इस घटनाक्रम का स्पष्ट संकेत भाजपा के विरूद्ध और महागठबंधन के पक्ष में है। बशर्ते की विपक्षी दल अपने व्यक्तिगत राग–द्वेष और महत्वकांक्षाओं से ऊपर उठकर एकजुट हों। भाजपा अध्यक्ष जेपी नड्डा की यह गर्वोक्ति कि आनेवाले दिनों में क्षेत्रीय पार्टियों का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा, को बिहार ने एक झटके में अर्स से फर्श पर ला खड़ा किया है। राष्ट्रीय पार्टियां बिहार में लगभग गौण हो गई हैं और क्षेत्रीय पार्टियां और उनके मुद्दे मुखर हो उठे हैं। क्षेत्रीय पार्टियों की इस एकजुटता ने दिल्ली सल्तनत की नींद हराम कर दी है। उनकी यह एकजुटता भाजपा को कभी भी अपदस्थ कर सकती है। बिहार में नीतीश, तेजस्वी का यह मिलन सामाजिक न्याय आंदोलन की गति को तो तीव्र करेगा ही, यह लगातार टूटते बिखरते समाजवादी आंदोलन और टुकड़ों–टुकड़ों में बंटे पुराने जनता दल नेताओं की वृहत्तर एकता का भी मंच बन जाए तो कोई आश्चर्य नहीं।

देश आज सामाजिक, आर्थिक बदहाली में गर्क हो चुका है। चहुंओर असुरक्षा की परिस्थितियां हैं और सरकार ही तोड़क की मुद्रा में काम कर रही है। वह अपने ही नागरिकों को आपस में लड़ा–भिड़वा रही है। एक गृहयुद्ध की परिस्थिति कमोबेश पूरे देश में व्याप्त है। महंगाई और बेरोजगारी चरम पर है। कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जिसे सरकार ने सुरक्षित छोड़ा हो। रेल, भेल, रक्षा और लगभग सभी महत्वपूर्ण विभाग खस्ताहाल हैं। सरकार इन क्षेत्रों को कॉरपोरेट और निजी पूंजपतियों को सौंप रही है। हर संवेदनशील मुद्दे को सांप्रदायिक ध्रुवीकरण में ढालना उनका मुख्य मकसद रहा है। युवाओं में धार्मिक घृणा और झूठे इतिहास का जहर तो वह घोल ही रही है। यह इतना बुरा दौर है कि गांधी के हत्यारे को महिमामंडित करने वाले असामाजिक तत्वों को सरकार जनप्रतिनिधि बनाकर सदन में भेज रही है और जो सचमुच के राष्ट्रभक्त हैं उन्हें सलाखों में डलवा रही है। कोरोना के समय उनका राष्ट्रवाद 'थाली पिटने' की गुहार के साथ आया था और अब 'हर घर तिरंगा' फहराने की शान के साथ अठखेलियां करता हुआ आ रहा है। कोरी भावुकता के सहारे जनता को छला ही जा सकता है उनकी बुनियादी समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता।

बिहार में महागठबंधन की नई सरकार आई यह देश, समाज के लिए शुभ संकेत है। लेकिन इस सरकार की चुनौतियां भी कम नहीं हैं। सरकार के जितने आयोग, निगम, कमिटियां और भाषाई अकादमियां हैं वे पूरी तरह से शिथिल हैं। भूमि सुधार, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, प्राकृतिक संसाधनों का बंटबारा आदि समस्याएं आज भी यथावत बनी हुई हैं। 32 वर्षों के मंडल राज में राजनीतिक परिवर्तन का अभूतपूर्व दौर आया। लेकिन समाज में आम आदमी तक यह सम्पूर्ण बदलाव अभी तक नहीं पहुंचा है। गरीबी और अमीरी की खाई जिस अनुपात में गहरी होती गई है उसको न सिर्फ दुरुस्त करना होगा बल्कि उसमें आमूलचूल बदलाव भी लाना पड़ेगा। यहां शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और सिंचाई जैसी बुनियादी समस्याओं पर ठोस और निर्णायक बदलाव की जरूरत है। आशा है कि माननीय मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और माननीय उप मुख्यमंत्री तेजस्वी प्रसाद यादव के कुशल नेतृत्व में गठबंधन की सरकार इन सम्पूर्ण बदलावों का वाहक बनेगी और बिहार से बेरोजगारी, पलायन और पिछड़ापन ख़त्म होगा और बिहार भारत के विकसित राज्यों की अग्रिम पंक्ति में शामिल होगा।

राजद समाचार का यह अंक आजादी की 75वीं वर्षगांठ पर एकाग्र है। आज जब भाजपा इतिहास का विकृत पाठ कर रही है और छद्म नायकों को आरोपित कर रही है, हमने इस अंक में 'जंग–ए–आजादी के छुपे हीरे' के तहत कुछ नायकों को प्रतिष्ठापित कर इतिहास का मूल पाठ प्रस्तुत किया है। 'अमृत काल में विष', 'जश्न–ए–आजादी का 75वां साल' शीर्षक परिचर्चा भी इसी निमित्त समर्पित हैं।

इस अंक की तैयारी अंतिम चरण में थी, तभी बिहार में एक बड़े राजनीतिक घटनाक्रम के परिणामस्वरूप महागठबंधन की सरकार सत्तासीन हो गई है। पूरे देश की राजनीतिक दिशा और दशा को बदलने वाले इस घटनाक्रम को भी हमने समेटने का प्रयास किया है। हमेशा की तरह इस बार भी आपकी प्रतिक्रिया का स्वागत है।

अरुण आनंद

■

नरेश नदीम

महागठबंधन की नई सरकारः विपक्षी एकता का आगाज

नीतीश, तेजस्वी मिलन : विपक्षी एकजुटता का पर्याय

बिहार ने जेपी आंदोलन से लेकर सामाजिक न्याय आंदोलन के हालिया दौर तक इस तथ्य को बार–बार सत्यापित किया है कि यह परिवर्तन की धरती है। इसी माह अगस्त क्रांति का दिन बिहार में परिवर्तन की नई बयार लेकर आया। राष्ट्रीय जनता दल नीत महागठबंधन में जदयू की वापसी हुई है। भाजपा के एकाधिकारवादी व भीतरघाती रवैये से परेशान बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने 09 अगस्त को महामहिम राज्यपाल फागू चौहान को इस्तीफा सौंप दिया। नीतीश कुमार सरकार गठन के वक्त से ही एनडीए गठबंधन में असहज महसूस कर रहे थे। हाल के कुछ महीनों से सांप्रदायिक घटनाओं में हो रही वृद्धि के कारण वे चिंतित रहने लगे थे। उपासना स्थलों में उपद्रवी तत्वों की घुसपैठ का मामला हो या उर्दू माध्यम विद्यालयों में रविवार से इत्तर साप्ताहिक अवकाश का मामला– घटक दल के बयानवीरों की ओर से उन्हें लगातार असहज स्थिति में धकेला जा रहा था। सांप्रदायिक शक्तियों के द्वारा लगातार उठाये जा रहे बेवजह के मुद्दों व अनर्गल प्रलाप से परेशान नीतीश कुमार की अंतरात्मा ने उन्हें गठबंधन बदलने को मजबूर किया। नेता प्रतिपक्ष तेजस्वी यादव इन घटनाओं पर बारीकी से नजर रखे हुए थे। नीतीश कुमार जी ने समर्थन के लिए तेजस्वी यादव जी की ओर हाथ बढ़ाया तो नेता प्रतिपक्ष ने उन हाथों को सहर्ष थाम लिया। तेजस्वी यादव ने पहले राजद की तत्पश्चात महागठबंधन की बैठक बुलाई तथा व्यापक सहमति से बिहार की जनता के हित में समाजवादी सरकार बनाने का फैसला किया। महागठबंधन के घटक राजद, कांग्रेस, भाकपा माले भाकपा, माकपा और हम के विधायकों ने नई सरकार के गठन पर अपनी सहमति दी। उसी दिन शाम को नई सरकार के गठन के दावे के लिए तेजस्वी यादव और नीतीश कुमार ने कांग्रेस नेता अजीत शर्मा, भाकपा माले नेता महबूब आलम, हम के संरक्षक पूर्व मुख्यमंत्री जीतनराम मांझी सहित अनेक वरिष्ठ नेताओं के साथ महामहिम राज्यपाल के समक्ष दावेदारी पेश की। राजभवन से निकलने के बाद नीतीश कुमार ने कहा, 'मैंने सरकार बनाने का दावा पेश कर दिया है। 164 विधायक हमारे साथ हैं। सात दल और एक निर्दलीय मिलकर हमलोग सरकार बना रहे हैं। राज्यपाल को 164 विधायकों के समर्थन की चिट्ठी हम लोगों ने सौंप दी है। समाज में जिस तरह से विवाद पैदा करने की कोशिश शुरू हो गई थी, वह हमें अच्छा नहीं लग रहा था। सभी की राय लेकर हमने नये गठबंधन की सरकार बनाने का निर्णय लिया है।'

दो समाजवादी धड़े का यह मिलन बिहार की जनता की अपेक्षाओं के अनुरूप ही है। जिसे रेखांकित करते हुए तेजस्वी यादव ने कहा, 'हम समाजवादी लोग हैं। हम सबकी राय थी कि राज्य में नया गठबंधन बने। हम एक हों और मिलकर काम करें। नीतीश कुमार का यह कार्य बिहार और राष्ट्रहित में है। वह देश के सबसे अनुभवी मुख्यमंत्री हैं। बिहार के हित में हमेशा

खड़े रहते हैं। हमारा कई बार मतभेद हुआ। हमने आरोप–प्रत्यारोप भी लगाये, लेकिन हमारे लिए जनता सर्वोपरि है। राज्य हित में हम एक हुए हैं।'

सामाजिक न्याय की शक्तियों का यह पुनर्मिलन निकट भविष्य में नई दिल्ली की राजनीति पर दूरगामी प्रभाव डालने की क्षमता रखता है। भाजपा बिखरे हुए विपक्ष का लाभ लेती रही है। बिहार की इस घटना से क्षेत्रीय दलों को संगठित करने के अभियान को ताकत मिलेगी। 2024 के लोकसभा चुनाव में केन्द्र की सत्ता पर मजबूत दावेदारी पेश करने के लिए विपक्षी दलों को एक प्लेटफार्म पर लाने में तेजस्वी यादव की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

महागठबंधन सरकार की दावेदारी पेश करने के बाद राजभवन के बाहर पत्रकारों को संबोधित करते हुए तेजस्वी यादव ने कहा, 'हमारा यह कदम देश के तमाम विपक्षी दलों को एक बड़ा संदेश है। हमने दिशा दिखाई है। यदि आप मजबूती के साथ खड़े होते हैं तो जनता भी आपका साथ देती है। जनता के मुद्दे पर बगैर किसी भय के खड़े हों तो पूरा देश आपके साथ खड़ा हो सकता है। पूरे देश में भाजपा का जो एजेंडा चल रहा है वह लोकतंत्र के लिए खतरनाक है। उनका एकमात्र उद्देश्य है, डरा कर अपना काम करो। जो डरता है, उसे डराओ और जो बिकता है, उसे खरीदो। भाजपा सबसे पहले अपने सहयोगी दलों को ही निपटाती है। पंजाब, महाराष्ट्र इसका उदाहरण है। इन राज्यों में क्या हुआ यह किसी से छुपा हुआ नहीं है। भाजपा किसी राजनी. तिक दल को आगे बढ़ते नहीं देख सकती। वह जिसके साथ रहती है उसे ही निपटाने में जुटी रहती है। भाजपा क्षेत्रीय दलों को खत्म करने के एजेंडा पर काम कर रही है। लोकतंत्र की धरती बिहार आकर ही भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष जेपी नड्डा अपने इस एजेंडे को सार्वजनिक करते हैं। लेकिन बिहार इसे किसी रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। यहां उनका एजेंडा किसी रूप में नहीं चल सकता है। हम इसे नहीं चलने देंगे। विपक्ष में केवल भाजपा बच गई है उसके साथ कोई खड़ा नहीं है। जन विरोधी कार्यो का यही परिणाम होता है। भाजपा आखिर कर क्या रही है, देश की सुरक्षा से खेल रही है। देश में अराजकता की स्थिति है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में इनका विश्वास ही नहीं है। वे लोग देश के अंदर–बाहर दोनों फ्रंट पर फेल हैं। चीन देश के अंदर आकर गांव बसा रहा है और ये हिन्दू–मुस्लिम करने में लगे हैं। समाज में तनाव पैदा कर रहे हैं। हम इसका मजबूती से विरोध करेंगे। हम किसी सूरत में झुकने वाले नहीं हैं। हम उनके सामने डटे रहेंगे।'

10 अगस्त को नीतीश कुमार के नेतृत्व में महागठबंधन की सरकार ने आकार ले लिया है। बुधवार की दोपहर दो बजे राजभवन के राजेन्द्र मंडप में आयोजित समारोह में महामहिम राज्यपाल फागू चौहान ने महागठबंधन के सभी नेताओं के समक्ष नीतीश कुमार को मुख्यमंत्री और तेजस्वी यादव जी को उप मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई। इस घटना ने बिहार सहित देश के उन तमाम लोकतांत्रिक बौद्धिक लोगों को राहत पहुंचायी जो भारत की सेक्यूलर ढांचे में विश्वास रखते हैं। उम्मीद है कि यह सरकार जनहित के मुद्दों को तत्परता से हल करने की दिशा में कारगर हस्तक्षेप करेगी। महागठबंधन सरकार 24 अगस्त को विधानसभा में विश्वास मत हासिल करेगी। मंत्रीमंडल गठन की प्रक्रिया भी पूरी कर ली गई है। यह दोबारा मौका है जब नीतीश कुमार के नेतृत्व में महागठबंधन की सरकार बनी है। 2015 में जब पहली बार महागठबंधन ने आकार लिया था तो विरोधी खेमा को मुंह की खानी पड़ी थी। बिहार विधानसभा चुनाव में बिहार की जनता ने लालू प्रसाद, नीतीश कुमार की जोड़ी को बम्पर समर्थन दिया था। राजद, जदयू, कांग्रेस के महागठबंधन को 243 सदस्यीय बिहार विधानसभा में 178 सीटें मिली थीं। यानी बिहार की जनता ने 73 प्रतिशत से अधिक सीटें गठबंधन की झोली में डाल दी थी। वर्ष 2017 में महागठबंधन की वह सरकार कुछ व्यक्तियों के साजिश की शिकार हो गई थी। उस गलती को जदयू के राष्ट्रीय अध्यक्ष ललन सिंह जी ने खुले मन से सार्वजनिक तौर पर स्वीकार किया है। जब पत्रकारों ने पूर्व मुख्यमंत्री राबड़ी देवी से जदयू के साथ हुए विगत के कटु अनुभव के बारे में प्रश्न किया तो उन्होंने कहा, 'सब माफ।'

तेजस्वी यादव के उप मुख्यमंत्री के रूप में शपथ लेते ही युवाओं में उत्साह का जबरदस्त संचार हुआ है। 2020 के विधानसभा चुनाव कैम्पेन में उन्होंने दस लाख नौकरी देने का वादा किया था। हालांकि तब छल छद्म से जनमत का अपहरण कर तेजस्वी को मुख्यमंत्री बनने से रोक दिया गया था। राजद सबसे बड़े दल के रूप में उभरी थी। आज विधानसभा में राजद के 79 विधायक हैं। तेजस्वी यादव उप मुख्यमंत्री की हैसियत से सरकार का हिस्सा हैं। गठबंधन सरकार की सीमाएं होती हैं, फिर भी तेजस्वी जी ने मुख्यमंत्री के समक्ष युवाओं के नौकरी और रोजगार के मुद्दे को जोर–शोर से उठाया है। मुख्यमंत्री से पहली बैठक के बाद मीडिया के समक्ष युवाओं को संबोधित करते हुए कहा–'बिहार में बंपर बहाली होगी। इस पर काम शुरू हो चुका है। अगले महीने से यह दिखने लगेगा। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार से इस मुद्दे पर हमारी बात हुई है। रिजल्ट जल्द सबके सामने होगा। उन्हें अपना वादा याद है। गरीब और युवाओं को नौकरी मिलेगी। हम लोग मिलकर इतना रोजगार देंगे, जितना पहले कभी नहीं मिला'। हमारी लड़ाई बेरोजगारी के खिलाफ है। हमारे मुख्यमंत्री गरीब और युवाओं के दर्द को समझते हैं।'

बिहार में महागठबंधन सरकार का गठन लोकतंत्र, सेक्युलरिज्म और सामाजिक न्याय के लिए शुभ सूचना है। बिहार ने पूरे देश की लोकतांत्रिक व सेक्युलर शक्तियों को एक संदेश दिया है कि कैसे निराशा के वातावरण से बाहर निकला जा सकता है तथा भाजपा के लम्बी अवधि तक शासन करने की योजना को डीरेल किया जा सकता है। उम्मीद है विपक्षी एकजुटता से संवैधानिक संस्थाओं और केन्द्रीय एजेंसियों के दुरुपयोग पर लगाम लगेगी। केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के आकांक्षी दलों के बीच उत्साह का संचार किया है। बस जरूरत है, एकजुटता की।

■

प्रसन्न कुमार चौधरी

'अमृत' काल में विष

1
हिसाब–किताब की हिंसा

सभी समुदाय इतिहास में अपने ऊपर हुए कथित अन्याय–अत्याचार का हिसाब–किताब चुकता करने लगे तो उसका अन्त मानव जाति की सामूहिक तबाही में होगा। इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में और अलग–अलग क्षेत्रों में हम इस सामूहिक तबाही का साक्षात्कार कर चुके हैं, और आज भी कर रहे हैं।

हजारों वर्षों के मानव जाति के इतिहास में प्रत्येक मानव–समुदाय के पास अपनी स्मृतियां हैं, गौरव के अपने क्षण हैं, अपने दुःख हैं, अपने शत्रु और मित्र हैं, अपने प्रेत हैं, कुल मिलाकर, अपने–अपने किस्से हैं जिनमें थोड़ा–बहुत इतिहास है, और बहुत–सारी अपनी–अपनी कुण्ठाएं हैं, अपने–अपने पूर्वाग्रह हैं।

मनुष्य द्वारा मनुष्य का, समुदाय द्वारा समुदाय का शोषण–उत्पीड़न–दमन; विरोधी कुलों; जनों, जातियों, वर्गों, राष्ट्रीयताओं का जनसंहार; युद्ध; श्रेष्ठ–निम्न का भाव आदि किसी एक मानव समाज की विशेषता नहीं रही है–(कुछेक अपवादों को छोड़कर) प्रायः सभी मानव समाजों में हम इन प्रवृत्तियों का साक्षात् कर सकते हैं।

सैकड़ों वर्षों के दौरान कोई समुदाय एक ही अवस्था में नहीं रहता–विजेता समुदाय शिखर से च्युत होकर गुमनामी में जा चुके होते हैं, और कई अनजान अथवा विजित समुदाय अपनी गुमनामी या पराधीन अवस्था से निकल कर अपने विजय अभियान में संलग्न होते हैं। ऐतिहासिक अन्याय के प्रतिकार के वादे–नारे वर्तमान में अपने पक्ष को गोलबन्द करने, अपनी हिंसक कार्यवाहियों को जायज ठहराने, और अपना वर्चस्व स्थापित करने का माध्यम होते हैं। इतिहास के नाम पर एक समुदाय दूसरे समुदाय पर बलपूर्वक अपना निर्णय थोप देता है, उसे उसके सम्मान, उसकी सम्पत्ति और सुकून से वंचित कर देता है।

2
पहचान

किसी व्यक्ति, संस्था, समुदाय, समाज और राष्ट्र की पहचान के मुख्यतः दो आधार रहे हैं। पहला, सम्बन्धित व्यक्ति, संस्था, समुदाय, समाज और राष्ट्र अपनी उपलब्धियों, नाकामियों और चुनौतियों के आधार पर अपनी पहचान स्थापित करता है। दूसरा, कोई व्यक्ति, संस्था, समुदाय, समाज और राष्ट्र किसी 'अन्य' व्यक्ति, संस्था, समुदाय, समाज और राष्ट्र के विरोध, उसके प्रति नफरत, सामाजिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक जीवन से उसके बहिष्कार तथा निष्कासन के आधार पर अपनी पहचान कायम करता है। इतिहास में हम पहचान के इन दोनों आधारों का साक्षात् करते हैं। अनेक मामलों में दोनों के मिले–जुले रूपों का भी, अथवा एक बड़े काल–खण्ड में हम किसी समाज को इन दोनों आधारों पर अपनी पहचान से जद्दोजहद करते हुए भी देखते हैं।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान हमारे नेताओं ने भारतीय समाज की पहचान के लिए पहला आधार चुना–स्वतंत्र भारत अपनी चुनौतियों, अपनी उपलब्धियों और नाकामियों से पहचाना जाएगा, न कि किसी 'अन्य' समुदाय, समाज या देश के प्रति नफरत से, न कि किसी 'अन्य' समुदाय के बहिष्कार और निष्कासन से। अंग्रेज भी 'बहिष्कृत अन्य' नहीं थे। मुस्लिम और ईसाई भी नहीं। दरअसल, यहां कोई 'अन्य' था ही नहीं। लम्बे औपनिवेशिक शासन तथा विभाजन की त्रासदी के बावजूद, स्वतंत्र भारत की भावी दिशा निर्देशित करने वाला यह 'निर्णायक चुनाव' था। इस चुनाव के पीछे अनेक समुदायों, पंथों और भाषाओं वाले हजारों वर्ष पुराने भारतीय समाज का ऐतिहासिक अनुभव था। 'नियति से किया गया वादा था।'

पचहत्तर साल बाद इस चुनाव को गम्भीर चुनौती दी जा रही है और उस ऐतिहासिक निर्णय को पलटा जा रहा है। मुस्लिम 'अन्य' के विरोध, उसके प्रति नफरत और सामाजिक–राजनीतक–सांस्कृतिक जीवन से उसके बहिष्कार और निष्कासन की मुहिम एक धारा के रूप में पहले से मौजूद तो थी ही, अब वह शासक विचारधारा बन चुकी है और अनवरत् आक्रामक अभियान का रूप ले चुकी है।

शताब्दियों से साथ–साथ रहनेवाले समुदायों के बीच सद्भाव और विवाद के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। तनाव और विवाद पैदा करने के अनेक मुद्दे बनाये और गढ़े जा सकते हैं। कोशिश यह है कि निरन्तर किसी–न–किसी बहाने मुस्लिम–विरोधी (ईसाई–विरोधी भी) शत्रु–भाव को भड़काते रहा जाए–हिन्दू समाज इस शत्रु–भाव के ज्वर में निरन्तर तपता रहे ताकि वर्चस्ववादी शक्तियों के हित में इसका तापमान इच्छानुसार बढ़ाया या घटाया जा सके।

इन कोशिशों के दुष्परिणाम के रूप में पूरा भारतीय समाज अन्दरूनी तौर पर क्षय–रोग से ग्रसित होता जा रहा है। 'अमृत' काल में भारतीय समाज के शरीर में विष घोला जा रहा है।

भारतीय समाज की पहचान के आधार को बदलने की यह प्रक्रिया भारतीय समाज के विघटन की, अन्दरूनी कलह की जिस प्रक्रिया को जन्म दे रही है, उसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता, समानता, मैत्री और समावेशी समृद्धि के आधार पर भारतीय समाज की पुनर्रचना की प्रक्रिया को जबर्दस्त आघात पहुंचा है।

नफरत एक संक्रमणशील क्रिया है। वह किसी एक समुदाय तक सीमित नहीं रह सकती। शासक वर्गों की राजनीतिक जरूरतों के अनुसार समाज की नयी श्रेणियां, नये समुदाय उसके आगे में आते

जाएंगे। मुस्लिम–विरोध पर आधारित हिन्दू गोलबन्दी कालक्रम में विभिन्न हिन्दू समुदायों के बीच पारस्परिक नफरत पर आधारित गिरोहबन्दियों में अधोपतित होने को बाध्य है।

3
पूंजी का प्रायोजन

स्वतंत्रता के साठ वर्षों के दौरान भारतीय पूंजी अपने विकास की जिस अवस्था में जा पहुंची थी, उससे आगे छलांग लगाने के लिए उसे देश के प्राकृतिक, सार्वजनिक और निजी संसाधनों पर अबाध नियंत्रण चाहिए था, और इस अबाध नियंत्रण के लिए चाहिये था। श्रम कानून, भूमि–अधिग्रहण कानून, वनाधिकार कानून, प्रदूषण–पर्यावरण से सम्बन्धित कानून में निर्णायक बदलाव और कॉरपोरेट टैक्स में भारी छूट। कुल मिलाकर, इसका मतलब था मजदूरों, किसानों, आदिवासियों और अन्य मेहनतकश–वंचित समुदायों के अर्जित अधिकारों को निरस्त करना, इन समुदायों के खिलाफ अघोषित युद्ध छेड़ना। ऐसा करना संविधान प्रदत्त बुनियादी अधिकारों का हनन किये बिना और मेहनतकश समुदायों के बीच विभाजन तथा कलह पैदा किये बिना संभव नहीं था। पूंजी की इन मांगों को पूरा करने में कांग्रेस की असमर्थता की स्थिति में कॉरपोरेट घरानों के प्रभावशाली हिस्से ने ऐतिहासिक रूप से उपलब्ध वैचारिक–राजनीतिक धाराओं में हिन्दुत्व की वैचारिक–राजनीतिक धारा पर अपना दांव लगाया। सत्ता में आते ही इन नये शासकों ने कॉरपोरेट घरानों की मांगों को 'फास्ट ट्रैक' पर डाल दिया।

हिन्दुत्व की राजनीति के इस उभार के पीछे कॉरपोरेट घरानों के प्रभावशाली हिस्से का प्रायोजन है, उसकी अकूत धन–शक्ति है। सामाजिक–आर्थिक जीवन पर इन घरानों के प्रभुत्व के खिलाफ आम मेहनतकश समुदाय की काट के रूप में अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति शत्रुभाव पर आधारित कथित आक्रामक हिन्दू गोलबन्दी है। स्वतंत्रता की पचहत्तरवीं वर्षगांठ पर 'नियति से किये गये वादे' की जगह 'कॉरपोरेट घरानों के साथ हिन्दुत्व की शक्तियों का किया गया वादा' है।

इसके साथ ही परिवर्तनकामी जीवन–मूल्यों पर भी प्रहार किया जा रहा है। कहा जा रहा है मेहनतकश अवाम नहीं, कॉरपोरेट घराने ही अर्थव्यवस्था की चालक शक्तियां हैं, वही हमारी प्रेरणा हैं, हमारे 'रोल मोडेल' हैं; उन्हें बिना किसी सार्वजनिक अथवा राजकीय नियंत्रण के, बेरोकटोक अपना कारोबार करने देना चाहिये। देश में काले धन का असली स्रोत वे नहीं, आम मध्य वर्ग है; धन, अधिक से अधिक धन, कमाना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिये। इतिहास में न्याय कभी नहीं रहा, इसलिए न्याय की बात फिजूल है। सरकार राशन दे रही है, मकान दे रही है, सबकी जेब में स्मार्ट फोन है ही, तो और क्या चाहिये। अन्यायपूर्ण सामाजिक–आर्थिक प्रणाली की जगह किसी वैकल्पिक प्रणाली के बारे में बात करना, उसके बारे में सोचना और काम करना निरर्थक है, आदि, आदि। यथास्थितिवादी शक्तियां पहले भी इस तरह की बातें करती ही थीं। हकीकत यह है कि आज सामाजिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक जीवन में जो कुछ अच्छा है, वह किसी–न–किसी सपने, किसी–न–किसी संघर्ष और वैकल्पिक प्रयास का ही परिणाम है, हमारी स्वतंत्रता भी।

सौहार्द, सम्मान, समता, सहकार, सह–भागिता, स्वतंत्रता कोरे शब्द नहीं हैं। ये मानवजाति की चेतना में अन्तर्निहित चिर–स्थायी भाव हैं, नफरत से कहीं अधिक प्रभावशाली। नफरत की आंधियों, अनगिनत युद्धों और बर्बरताओं के बावजूद मानव जाति का अपना सृजनात्मक ऊर्जा के साथ बना रहना इसका जीवंत प्रमाण है। भारतीय समाज भी इसका साक्षी है, और आगे भी रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

4
पुनर्रचना की प्रतिक्रिया

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान ही भारतीय समाज की पुनर्रचना का प्रयास और आन्दोलन भी आरम्भ हो चुका था। स्वतंत्रता के बाद इन प्रयासों और आन्दोलनों ने प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया और भारतीय समाज की पुनर्रचना की यह प्रक्रिया जारी रही–भले ही उसकी रफ्तार धीमी और उसकी उपलब्धियां आधी–अधूरी ही क्यों न रही हों।

इस पुनर्रचना की प्रक्रिया में परम्परागत रूप से वर्चस्व का सुख भोगनेवाले अभिजात्य समूहों को पीछे हटना पड़ा। इन समूहों ने महिलाओं, वंचित समुदायों, श्रमिकों, किसानों आदि के पक्ष में उठाये गये सकारात्मक कदमों और सुधारों को कभी मन से स्वीकार नहीं किया। वे अपना बदला लेने की ताक में तो थे ही–हिन्दुत्व के बैनर तले अब वे अपने विरोधियों से निपटने की साध पूरी कर सकते थे, और सारे सुधारों को 'यूरोप से प्रेरित' और उसकी 'नकल' बता कर उसे हिन्दू–विरोधी, भारत–विरोधी करार दे सकते थे। भांति–भांति के इन विक्षुब्ध समूहों में सती–प्रथा के उन्मादी समर्थकों से लेकर भूमि–श्रम–पूंजी के बाजार को पूरी तरह खोल देने को लेकर बेताब तथा कांग्रेस से उम्मीद खो बैठे कॉरपोरेट घरानों की प्रभावशाली लॉबी तक शामिल थी। इसमें सवर्ण अभिजात्यों के वे समूह थे जो सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं, 'शूद्रों' और आदिवासियों की उत्तरोत्तर बढ़ती भागीदारी तथा दावेदारी से मन–ही–मन आग बबूला हो रहे थे। इसमें सम्मान, पद, पुरस्कार आदि से वंचित रह गये साहित्यकार, बुद्धिजीवी, प्राध्यापक आदि भी शामिल थे, भारत माता की वन्दना में और जगद्गुरु भारत की प्रशस्ति में लिखा जिनका प्रबन्ध काव्य तथा शोध–ग्रंथ पाठ्य–पुस्तकों में स्थान नहीं पा सका था, प्राचीन भारत में मस्तिष्क के सफल प्रत्यारोपण जैसे विषयों पर जिनके अति–महत्वपूर्ण शोध–कार्यों को न तो कोई प्रोत्साहन मिल पाया था और न ही कोई प्रायोजक। (कोई व्यवस्था परिपूर्ण, निर्दोष नहीं होती। इन विक्षुब्धों की कुछ शिकायतें सही भी हो सकती हैं, अथवा थीं, लेकिन अब वे और प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे और उपलब्ध मौके का पूरा फायदा उठा लेना चाहते थे।)

स्वतंत्रता की पचहत्तरवीं वर्षगांठ पर अब ये विक्षुब्ध नहीं शासक समूह बन चुके हैं। उनके 'शोध–कार्यों' को अब सत्ता का प्रोत्साहन मिल रहा है; सम्मान, पद, पुरस्कार की सारी कोर–कसर पूरी की जा रही है; सार्वजनिक सम्पत्ति और बचत पर कॉरपोरेट घरानों का अब पुख्ता नियंत्रण है, श्रमिकों, किसानों तथा आदिवासियों को

उनकी औकात बतायी जा रही है। पचहत्तरवीं वर्षगांठ पर भारतीय समाज सामाजिक पुनर्रचना से सशक्त हुए समुदायों, और उसी प्रक्रिया के क्रम में विक्षुब्ध हुए किन्तु अब सत्तासीन समूहों के बीच निर्णायक संघर्ष से गुजर रहा है।

सामाजिक पुनर्रचना के लिए चले आन्दोलन कालक्रम में सम्प्रदायों का रूप ले लेते हैं। वर्चस्वशाली शक्तियां उनके नायकों तथा प्रतीकों का अपहरण कर लेती हैं और इन नायकों तथा प्रतीकों को उनके परिवर्तनकारी सार से वंचित कर उन्हें पत्थर और कंक्रीट के बेजान स्मारकों में तब्दील कर देती हैं।

5
अन्यता

'अन्यता' यूरोपीय अवधारणा नहीं है। 'अन्य' की अवधारणा भारतीय समाज में इस कदर हावी रही कि उसने 'भारतीय' होने के बोध को ही कमोबेश नामुमकिन बना दिया। शूद्र–अन्त्यज–असुर के रूप में 'अन्दरूनी अन्य' तथा म्लेच्छों के रूप में 'बाह्य अन्य'–भारतीय ब्राह्मणवादी समाज–व्यवस्था की अस्मिता इन्हीं 'बहिष्कृत अन्यों' के संदर्भ द्वारा परिभाषित होती थी। (इतिहास के अलग–अलग दौर में अलग–अलग समुदाय म्लेच्छ के रूप में चिह्नित किये गये।) आर्य–ब्राह्मणों का आर्यावर्त, भारतवर्ष 'अन्यों' का–अछूतों, शूद्रों, असुरों का भारत नहीं बन सका।

यूरोप भी (प्रति या विरोधी के रूप में) 'अन्य' नहीं है। भारत और यूरोप दोनों जगह मनुष्य ही रहते हैं–मानवजाति की चारित्रिक विशिष्टताएं दोनों जगहों के मानव–समाजों में पायी जाती हैं। प्रकृति–प्रदत्त सीमाओं के परे जाने की उद्यमिता, आविष्कार–अन्वेषण–नवाचार की प्रवृत्ति, और (जैसाकि हम पहले बता चुके हैं) मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण–उत्पीड़न–दमन, श्रेष्ठ–निम्न का भाव, युद्ध, जनसंहार आदि – प्रायः सभी मानव समाजों में ये प्रवृत्तियां देखी जा सकती हैं। अलग–अलग समयों और क्षेत्रों में अलग–अलग मानव–समाजों में इनका अनुपात अलग–अलग होता है। विभिन्न क्षेत्रों में बसनेवाले समाजों का विकास ताल मिलाकर नहीं होता।

तथापि यह सही है कि पिछले करीब पांच सौ सालों में वाणिज्यिक–औद्योगिक–वित्तीय पूंजीवाद के दौरान यूरोप के देशों द्वारा जिस तरह प्रकृति का दोहन किया गया, अमेरिका से लेकर अफ्रीका और एशिया के समाजों को जिस बर्बरता के साथ रौंदा और लूटा गया, जितना लोमहर्षक अत्याचार तथा जनसंहार किया गया, दास–प्रथा के रूप में तथा औपनिवेशिक प्रणाली के तहत सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में जो कहर ढाया गया, उसकी तुलना अतीत के किसी भी दौर के साथ नहीं की जा सकती। (विश्व–युद्धों तथा हिरोशिमा–नागासाकी के परमाणु संहार की बात हम यहां नहीं करेंगे।) वैसे, हिन्दुत्ववादी शक्तियों की दिलचस्पी यूरोपीय शक्तियों की इन बर्बरताओं तथा जनसंहारों में नहीं, उनकी दिलचस्पी मुसलमानों को सबसे बर्बर साबित करने में है।

प्रत्येक दौर में, और प्रायः हर समाज में ऐसे व्यक्ति, ऐसे विचार और ऐसे आन्दोलन भी होते रहे हैं जो विभिन्न रूपों में मनुष्य द्वारा मनुष्य और समुदाय द्वारा समुदाय के शोषण–उत्पीड़न, श्रेष्ठ–निम्न के भाव, जनसंहारों आदि का प्रतिरोध, तथा मनुष्य और समुदायों के बीच परस्पर सम्मान, सद्भाव तथा समानता का पक्षपोषण करते रहे हैं। भारत में भी प्राचीन काल से ही ऐसे विचारों और आन्दोलनों की लम्बी परम्परा रही है।

6
समावेशी मैत्री

'अन्य' की अनुपस्थिति का अर्थ है सब की स्वीकृति। यही एक समावेशी समाज की बुनियाद है।

राजमहल के षड्यंत्रों और युद्धों से गुजरने के बाद तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में अशोक ने अपने गुफा–लेख में यही उत्कीर्ण कराया: समवाय एव साधु। मैत्री ही स्तुत्य है।

बाबा साहब आम्बेडकर हिन्दुओं के दार्शनिक तथा पंथ–सम्बन्धी विचारों को तीन धाराओं में बांटते हैं और उन्हें क्रमशः (क) ब्रह्मवाद, (ख) वेदान्त, और (ग) ब्राह्मणवाद नाम देते हैं। उपनिषदों के महावाक्य (यथा, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि) को ब्रह्मवाद का सार बताते हुए वे लिखते हैं कि ब्रह्म के इस सिद्धान्त के निश्चित सामाजिक निहितार्थ हैं जिनका जनतंत्र के आधार के रूप में भारी महत्व है। अगर सभी व्यक्ति ब्रह्म के ही अंश हैं तो सभी समान हैं और सभी को समान स्वतंत्रता का उपभोग करना चाहिये। इस लिहाज से, उनके अनुसार, इस बात में रत्ती भर भी संदेह नहीं हो सकता कि कोई सिद्धान्त जनतंत्र को उतना मजबूत आधार प्रदान नहीं करता जितना ब्रह्म का सिद्धान्त। वे आगे लिखते हैं, "जनतंत्र के पश्चिमी अध्येताओं ने यह विश्वास फैलाया है कि जनतंत्र का उद्भव या तो ईसाई मत से हुआ है या प्लेटो से, और इनके अलावा जनतंत्र का कोई दूसरा प्रेरणा–स्रोत नहीं रहा है। अगर उन्हें यह पता होता कि भारत ने भी ब्रह्मवाद का सिद्धान्त विकसित किया था जो जनतंत्र को बेहतर आधार प्रदान करता है, तो (इस मामले मे) वे इतने कट्टर नहीं होते।"

बहरहाल, अन्य की अनुपस्थिति तथा एक समावेशी जनतांत्रिक समाज के लिए बेहतर बुनियाद प्रस्तुत करने वाले ब्रह्म के सिद्धान्त की उपस्थिति के बावजूद उसे धर्म का आधार नहीं बनाने और एक नये समाज के निर्माण में विफल होने को वे एक बड़ी पहेली बताते हैं। उनके अनुसार, "इसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर हमारे पास ब्रह्मवाद का सबसे जनवादी उसूल था, और दूसरी ओर जातियों, उपजातियों, अछूतों, आदिम जनजातियों, अपराधी जनजातियों से भरा–पड़ा समाज।"

जनतंत्र की बुनियाद है भाईचारा। राज्य का कानून स्वतंत्रता और समानता को कायम नहीं रखता। उसे कायम रखता है समाज में भाईचारा। आम्बेडकर फ्रांसीसी क्रान्तिकारियों द्वारा प्रयुक्त फ्रेटरनिटी (भाईचारा) शब्द की जगह बुद्ध के शब्द 'मैत्री' को उपयुक्त मानते हैं। यह समाज में मैत्री है जो स्वतंत्रता और समानता को आधार प्रदान करती है –"मैत्री की अनुपस्थिति में स्वतंत्रता समानता को, और समानता स्वतंत्रता को नष्ट कर देगी।"(रैदास की वाणी में यह मित्र–भाव मीतु–भाव है ; 'जो हम सहरी सु मीतु हमारा'।)

करीब डेढ़ हजार वर्षों तक (ईसा पूर्व 500 से ईस्वी सन् 1000 तक) वैचारिक जगत में बौद्ध–मत की बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उपस्थिति काफी प्रभावकारी थी। लेकिन ब्राह्मणवादी मीमांसकों के

लिए बौद्ध–मत 'बहिष्कृत अन्य' था। आज तक ब्राह्मण साहित्य में उस काल की जो चर्चा मिलती है, उसमें या तो उसे अत्यन्त गौण स्थान दिया गया है या फिर उसकी बिल्कुल उपेक्षा की गई है। ब्राह्मण टोलों में बौद्ध ग्रंथों का पठन–पाठन निषिद्ध था। कहने की जरूरत नहीं कि स्वतंत्रता की पचहत्तरवीं वर्षगांठ के समय हमारे समाज के महत्वपूर्ण घटकों के प्रति मैत्री–भाव को सुनियोजित रूप से नष्ट किया जा रहा है।

7
प्रामाणिक आत्म का मायाजाल

भारत की समावेशी पहचान को चुनौती देने के बौद्धिक प्रयास अब काफी तेज हो गये हैं। एक लेखक भारत के 'प्रामाणिक आत्म की पहचान' और 'अतीत के भारत के सनातन मूल्यबोध के पुनराविष्कार' के लिए 'प्रामाणिक संस्कृतात्मा के प्रत्यभिज्ञान की कार्ययोजना' प्रस्तावित करते हैं। भारत के 'प्रामाणिक आत्म' की खोज उन्हें दो हजार वर्ष पहले की दुनिया में ले जाती है – "पिछले दो हजार वर्षों के दौरान विदेशी आक्रमणों, ऐतिहासिक उथल–पुथल और विशेषकर औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया ने भारत के सांस्कृतिक–साभ्यतिक बोध को धूमिल, कलुषित और अन्यथा नहीं कर दिया? इससे उसके स्वरूप और ऐतिहासिक क्रियान्वयन की सातत्यता ही मानो छिन्न–भिन्न हो गयी है।" हाइडेगर के 'प्रोजेक्ट ऑफ थॉट' से प्रेरित यह बौद्धिक परियोजना भारत के नवनिर्माण की 'राजाराममोहनीय योजना जिसमें भारत की आत्मा को खोजने के बजाय यूरोप की आत्मा की प्राण प्रतिष्ठा कर दी गई' के लिए पण्डित जवाहरलाल नेहरू को जिम्मेवार ठहराती है और 'उग्र हिन्दू रिवायवलिज्म' का निम्नलिखित शब्दों में समर्थन करती है, "एक दूसरी विचारधारा 'नान्यः पंथा' के रूप में उपनिवेशवाद का समाधान हिन्दू रिवायवलिज्म में देखती है। आजकल इसे दक्षिणपंथ कहा जाता है। इस विचारधारा को अपने ही देश में बहुत भर्त्सना का सामना करना पड़ा है। यहां तक कि सम्प्रति इसे फासीवाद कहा जाता है। यद्यपि इनमें कुछ भी ऐसा नहीं है। चूंकि स्वतंत्रता से निकट पूर्व और पश्चात् जिन विजातीय और विधर्मी विचारधाराओं ने भारत पर शासन किया और अपने लाभ के लिए इस देश की बहुसंख्यक हिन्दू–अस्मिता के साथ न्याय नहीं किया, इस कारण इस विचारधारा में उग्रता का पुट आना स्वाभाविक था। अन्यथा इसका चरित्र राजनीतिक कम और सांस्कृतिक पुनरुत्थानवादी अधिक है।"

भारत के प्रामाणिक आत्म की खोज में लेखक दो हजार वर्ष पहले के भारत में तो जाते ही हैं, साथ ही सगर्व यह दावा भी करते हैं, "भारतीयों की अन्य संस्कृतियों के प्रति ज्ञानात्मक उदासीनता के दो कारण – इनमें पहला यह कि भारतीयों ने पहले ही एक ऐसी आत्मनिर्भर और आत्मपूरित व्यवस्था तैयार कर ली थी जो जीवन और जगत् की तमाम जरूरतों, जिज्ञासाओं का समाधान करने में सक्षम थी। अतः उन्हें दूसरी संस्कृतियों से कुछ सीखने की आवश्यकता जान नहीं पड़ी। दूसरा एक और गम्भीर कारण यह कि भारतीयों के लिए अपनी अस्मिता को परिभाषित करने का संदर्भ कभी 'अन्य' रहा ही नहीं, जैसे कि यूरोपियों के लिए यह सदैव रहा है। आत्म को हमेशा यहां आत्म–संदर्भी रूप में स्वीकार किया गया है।"

बहरहाल, प्रामाणिक संस्कृतात्मा के प्रत्यभिज्ञान की बौद्धिक परियोजना के संदर्भ में फिलहाल इतना कहना ही पर्याप्त है:

का सारे प्रमाण दिक्काल सापेक्ष हैं, शर्तों से बंधे हैं–निरपेक्ष रूप से, अन्तिम तौर पर कुछ भी प्रामाणिक नहीं है। प्रामाणिक को संदिग्ध बनाना विचार और विज्ञान का प्राथमिक कार्यभार है –विचार और विज्ञान का विकास प्रामाणिक को संदिग्ध बनाने की प्रक्रिया में ही होता है, और यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है। उपनिवेश बनने से पहले, या दो हजार वर्ष पहले भी, कोई 'प्रामाणिक भारत' नहीं था। 'प्रामाणिक संस्कृतात्मा' दार्शनिक लिहाज से एक निरर्थक, शाब्दिक बाजीगरी है। ख. 'अन्य' की अवधारणा यूरोपीय अवधारणा नहीं है (सम्बन्धित लेख में 'यूरोप', 'विधर्मी', 'विजातीय' विचारधारा का प्रयोग 'अन्य' के अर्थ में किया गया है।) पहले हम इस विषय पर चर्चा कर चुके हैं।

ग. सृष्टि और समाज में कहीं भी, कभी भी आत्मपूरित और आत्मनिर्भर व्यवस्था नहीं रही है। दरअसल ऐसी किसी व्यवस्था के अस्तित्व का विचार जड़ता तथा आत्म–विनाश का मार्ग प्रशस्त करता है, अपने कूपमंडूक अहमन्यता का भौंडा प्रदर्शन है, और अपनी दासता का आमंत्रण है। क्या शानदार 'आत्मनिर्भर और आत्मपूरित व्यवस्था थी' जिसने शताब्दियों तक उपनिवेशीकरण का मार्ग प्रशस्त कर दिया। विकासमान, सतत् परिवर्तनशील सृष्टि और समाज में सारी व्यवस्थाएं शर्तों से बंधी, सापेक्ष और अपूर्ण हैं, परस्पर निर्भरशील हैं; जीवन और जगत की जरूरतों, जिज्ञासाओं के सारे समाधान दिक्–काल से बंधे हैं, संक्रमणशील हैं। जिन्हें दूसरों से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती, वे दूसरों की दासता की जंजीरों में जकड़े जाते हैं। दूसरों से कुछ नहीं सीखने और बहिष्कृत अन्यों की उपस्थिति ने कालक्रम में उपनिवेशीकरण की राह आसान कर दी।

8
हिन्दुत्व और हिन्दी

हिन्दी को हिन्दुत्व के साथ नत्थी करने का अपना एक इतिहास रहा है। कोई भाषा अपने स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया में सतत् समावेशी समुदाय की रचना करती चलती है। हिन्दी को हिन्दुत्व के साथ नत्थी करने के प्रयासों ने हिन्दी की इस स्वाभाविक विकास प्रक्रिया को बाधित किया है। इससे हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच का सौहार्द भंग हुआ है और समय–समय पर इसने सामाजिक तनावों को जन्म दिया है।

आज जब हिन्दुत्व की शक्तियां सत्ता में आने के बाद अपनी आक्रामक मुहिम में जुटी हुई हैं, हिन्दी को सर्वप्रथम हिन्दुत्व के साथ नत्थी किये जाने के प्रयासों से छुटकारा पाना होगा और उसे हिन्दुत्व के प्रतिरोध की अग्रणी भाषा बननी होगी – आज यह हिन्दी तथा हिन्दी समुदाय के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है। इस प्रतिरोध का भी अपना एक इतिहास रहा है।

(कई चर्चित पुस्तकों के लेखक एवं चिंतक।)

■

जश्न-ए-आजादी का 75वां साल

आजादी के अमृत महोत्सव के प्रायोजित चमक–धमक और शोरगुल में इससे जुड़े मूल्यबोध पृष्ठभूमि में चले गए हैं। जबकि इस पचहतरवें साल में जरूरी है कि हम भारतीय गणतंत्र की मुख्य उद्घोषणाओं की जांच–पड़ताल करें। राजद समाचार ने इस मौके पर एक परिचर्चा का आयोजन किया है जिसमें बिहार के अलग–अलग क्षेत्रों के चर्चित बुद्धिजीवियों के जनतंत्र, सेक्युलरिज्म, न्याय, विकास जैसे मुद्दों पर मतामत लिए गए। प्रस्तुत है इन मुद्दों पर चर्चा का विस्तृत अंशः

(1) विश्व पटल पर गणतंत्र की जननी के रूप में बिहार की ख्याति रही है। देश आज लोकतंत्र की 75 वीं वर्षगांठ मना रहा है। इन वर्षों में भारत में जनतंत्र की सफलता–असफलता को आप कैसे देखते हैं? इसमें बिहार का क्या योगदान है?

(2) हिन्दू, बौद्ध, जैन, सूफीज्म और सिख सरीखे विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों की सम्मिलित कड़ी के रूप में बिहार की पहचान रही है, लेकिन आज यह भूमि उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद और हिन्दुत्व की एकरेखीय संकीर्णता में गर्क है। तेजी से बढ़ते इस अपक्षरण से बिहार को बचाने का रास्ता क्या है?

(3) बिहार समाजवादी, साम्यवादी और मंडल आंदोलन की जमीन रहा है। इन आंदोलनों ने बिहार को कितना बदला? क्या यह बदलाव पूर्ण हो गए या बदलाव की प्रक्रिया अभी बाकी है?

(4) विकास के हर मानक पर आज देश के सभी राज्यों में बिहार की गणना निचले पायदान पर होती है। यहां गरीबी और अमीरी की खाई लगातार चौड़ी ही होती गई है। कौन–सा रास्ता है बिहार को विकास की ओर ले जाने का?

बिहार अभी भी एक आंतरिक उपनिवेश

प्रकाश चंद्रायन

बहुप्रचारित लोकतंत्र की जननी वैशाली वस्तुतः कुलीन जनपदीय जनतंत्र था। जिसका निर्णय अभिजन करते थे न कि सामान्यजन। जनपद के प्रमुख राजा होते थे। यहां तक कि उस जनपद में राज नर्तकी की व्यवस्था थी फिर भी वह एक ऐतिहासिक प्रयोग था, जिसका पाटलिपुत्र की राज्यव्यवस्था ने अंत कर दिया था। वह अवैदिक (श्रमण) पृष्ठभूमि की व्यवस्था थी। वैदिक प्रभुत्व में वैसा उदाहरण नहीं है, क्योंकि वहां चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के कारण राजतंत्र ही अपेक्षित था, जिसमें पुरोहित–राजन–महाजन–सेवक का वर्ग विभाजन तय रहा, दरबारशाही संरचना में लोकतंत्र असंभव था, चाहे वह हिंदू राजकाल हो या मुस्लिम बादशाही।

वर्तमान संवैधानिक संसदीय लोकतंत्र ब्रिटिश ढांचागत देन है, जो अनेक दबावों से भारतीय मिजाज़ में ढल रहा है। बावजूद जनाकांक्षाओं के अभी भी यह शासक घटकों से मुक्त नहीं हो सका है। अभी इस पर अनुदार शक्तियों का दबदबा है। बिहार ने कई बार इसे जनोन्मुखी और उदार बनाने के लिए संघर्ष किया है, लेकिन बिहार में अभी भी सामंती तत्व प्रभावी हैं इसलिए निरंतर लोकतांत्रिक संघर्ष की आवश्यकता है।

बिहार पहली सहस्राब्दी में ही समृद्ध अवैदिक (श्रमण)ज्ञान और समाज–सत्ता की वैश्विक प्रयोगभूमि रहा। कालांतर में यहां वैदिक वर्चस्व कायम हुआ, जिसने श्रेष्ठता–निकृष्टता आधारित संरचना स्थापित की। इससे आर्थिक–सामाजिक–सांस्कृतिक–मानसिक विषमता बढ़ती रही, जो आज भी जारी है। इन विषमताओं का उन्मूलन करने का कोई इरादा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने नहीं दिखाया है। उसका छिपा इरादा राष्ट्रवादी हिन्दुत्व या हिन्दुत्ववादी राष्ट्रवाद की छतरी के नीचे विषमताओं को संरक्षित करने का है। इन विषमताओं के चक्र से बिहार की उत्पीड़ित जनता को विवेकवादी अभियान चलाकर मुक्त होना होगा। पहलकदमी की अपेक्षा है।

बिहार में समाजवादी–साम्यवादी आंदोलन का मूल स्वर आर्थिक–सामाजिक विषमता का विरोध और सामंती व्यवस्था का प्रतिवाद था। एक स्तर पर त्रिवेणी संघ ने भी प्रतिरोध किया और नक्सलवादी आंदोलन ने भी तीव्रतम प्रतिकार किया। मंडल परिघटना का मूल स्वर शिक्षा–शासन–प्रशासन में हिस्सेदारी का रहा, जिसका पहला निर्णायक कदम कर्पूरी ठाकुर ने उठाया था, लेकिन आज भी यह प्रक्रिया अधूरी है, क्योंकि नई अर्थनीति के तहत सार्वजनिक क्षेत्र खत्म किया गया और निजीकरण–भूमंडलीकरण में हिस्सेदारी की संभावना ही अभी तक नहीं है। इस तरह बराबरी और हिस्सेदारी का आंदोलन जरूरी है, जबतक वर्चस्व और गैर बराबरी व्याप्त है। यहां उल्लेखनीय है कि हर आंदोलन में ठहराव आ जाता है, यदि उसमें नवीन विचार–दृष्टि न डाली जाए। मूल अंतर्विरोधों को न पहचाना जाए। वैज्ञानिक व्याख्या न की जाए। इसलिए दीर्घजीवी परिवर्तनमूलक जनांदोलन

सिद्धांत, नेतृत्व और संगठन से ही फलीभूत हो सकता है। भीड़वादी प्रयास अराजकता में तब्दील हो जाते हैं। ऐसा बिहार में हुआ है। सामंती व्यवस्था के बावजूद 1947 के पूर्व बिहार में कृषि आधारित औद्योगिकीकरण था, जो 1947 के बाद खत्म होने लगा। आज बिहार श्रमिक आपूर्तिकर्ता राज्य है जबकि दक्षिण–पश्चिम भारत को पूंजी संग्रहण क्षेत्र बनाया गया है। बिहार का श्रम आपूर्तक बनना गिरमिटिया प्रथा का नवीकरण है।

बिहार के ही समाजवादी चिंतक सच्चिदानन्द सिन्हा ने काफी पहले आंतरिक उपनिवेश की अवधारणा रखी थी, इस पर सोच–विचार होना चाहिए ताकि बिहार अपने बूते अपनी खाइयों को पाट सके। अनुत्पादक और परजीवी दुष्चक्र का उन्मूलन करने का रास्ता ढूंढ़े. कोई पराया मुक्ति का मार्ग नहीं दिखाएगा। बिहार के जनसाधारण को ही उठना होगा।

(खगड़िया जिले के रहने वाले लेखक, सामाजिक–राजनीतिक विषयों के गहरे अध्येता हैं। लोकमत समाचार के फीचर सम्पादक रहे हैं।)

■

समाजवादी राजनीति ने जनतंत्र को जड़ों तक पहुंचाया

कमलेश वर्मा

आजादी के अमृत महोत्सव को प्रतीकात्मक मानना चाहिए। यह सब सरकार की बनायी हुई योजनाओं के अनुसार घटित हो रहा है। इसके पीछे जनता की कोई आकांक्षा काम नहीं कर रही है। समाज के किसी भी कोने से ऐसी कोई आवाज़ नहीं आयी है कि देश में आजादी का अमृत महोत्सव मनाया जाना चाहिए। यह ज़रूरी भी नहीं है कि सरकार केवल जनता की मांग के अनुसार कार्यक्रम बनाये। वह स्वयं भी तय कर सकती है कि देश के लिए क्या ज़रूरी है। यह सब तय करते हुए वह अपनी वैचारिकी और राजनीतिक योजनाओं को प्रायः ध्यान में रखती है। 1997 में भी स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती मनायी गयी थी। अनेक कार्यक्रम हुए थे। आज़ादी के मूल्यों पर पुनर्विचार हुए थे। उससे सम्बंधित कार्यक्रमों का कोई स्थायी महत्त्व देखने में नहीं आया।

1907 में 1857 के 50 बरस पूरे होने पर इंग्लैंड में दो तरह के कार्यक्रम हुए थे। ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न कार्यक्रम करके 1857 के विद्रोह में मारे गए अपने देशवासियों को भावभीनी श्रद्धांजलि दी थी और विद्रोहियों को हिंसक, क्रूर, बर्बर आदि रूपों में पेश किया था। दूसरी तरफ इंग्लैंड में शिक्षा प्राप्त कर रहे भारतीय नौजवानों ने 1857 को आज़ादी की पहली लड़ाई के रूप में व्याख्यायित करने का प्रयास किया। इस टकराहट ने 1907 के कार्यक्रमों को यादगार और प्रभावी बना दिया। इन सबका असर भारत तक पहुंचा और आनेवाले समय में इस टकराहट को बार–बार याद किया गया। 1997 की स्वर्ण जयंती के उत्सव और 2022 के अमृत महोत्सव के उत्सव अपने शासकीय रूपों की प्रमुखता को छोड़ नहीं पाएंगे। जनता की कोई स्वतंत्र भागीदारी शायद ही दिखायी पड़े. मगर सरकार का यह सन्देश वैश्विक पटल पर ज़रूर जाएगा कि भारत की स्वतंत्रता 75 वर्ष की हो गयी है। अब ऐसा माहौल भी नहीं रह गया है कि इस मौके पर भारत का कोई समुदाय अपनी स्वतंत्रता को खतरे में बताकर उचित प्रतिक्रिया की उम्मीद करे। यह भी संभव नहीं है कि आज़ादी के मूल्यों की समीक्षा हो सके। यह भी संभव नहीं है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास को उचित विस्तार देने की सच्ची योजना बन सके।

ऐसे कार्यक्रम अपनी भव्यता और दिव्यता के लिए याद किए जाते हैं। इनमें बजट का विशेष महत्त्व होता है। जनता यह याद रखेगी कि कितनी धूम–धाम से इसके कार्यक्रम संपन्न हुए। इनसे देश की समृद्धि और सम्पन्नता की तस्वीर बनाने में सरकार को मदद मिलेगी। यह लगेगा कि हमारा देश कितना उत्सवधर्मी है और कितना उल्लासमय है। मगर कुछ दिनों के बाद यह सब दस्तावेज का हिस्सा बनकर रह जाएगा।

जनतंत्र की सफलता–असफलता का सन्दर्भ पूरे देश से जुड़ा है। बिहार में कोई अलग से महत्त्वपूर्ण गैर–जनतांत्रिक घटना शायद ही घटित हो रही है। ब्यौरे अलग हो सकते हैं, मगर प्रवृत्ति लगभग एक है। कुछ अर्थों में लोकतन्त्र कमज़ोर ज़रूर हुआ है, मगर ज्यादातर राजनीतिक परिवर्तन के पीछे लोकतांत्रिक प्रक्रिया का पालन होते हुए दिखाया ज़रूर जाता है। सरकारों के बनने–बिगड़ने की प्रक्रिया भी तो लोकतन्त्र की बनी हुई व्यवस्था के बीच से ही निकलती है। नैतिक प्रश्नों के आधार पर जो आलेचना की जाती है, उसकी प्रासंगिकता आज समाप्त हो चुकी है। यही वह जगह है कि जहां लगता है कि बिहार में लोकतन्त्र कमज़ोर हुआ है।

बिहार ने गांधीवाद, समाजवाद और मंडल राजनीति के माध्यम से जनतंत्र को जड़ों तक पहुंचाया था। राजनीति के लिए बने हुए समाजवादी और मंडलवादी संगठन जब तक अपने स्वाभाविक नेताओं के नेतृत्व में काम करते रहे तब तक उनके लोकतान्त्रिक तेवर बचे रहे। बाद में ये संगठन अपनी आंतरिक बनावट में लोकतन्त्र के पालन में असमर्थ हो गए। भला ऐसे लोग देश या बिहार के लोकतन्त्र को कैसे बचा पाते! जो संगठन अपने अंतर्विरोधों को सबके सामने आने नहीं देते, वे भी अपने आंतरिक लोकतन्त्र का पालन नहीं करते हैं। ये ऐसी स्थित में भारत के लोकतन्त्र को परिवर्तित रूप में ही बचाए रखा जा सकता है। जहाँ देखने पर तो लगेगा कि लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के माध्यम से ही प्रत्येक काम हो रहा है, मगर वह अपनी नैतिक शक्ति से वंचित होकर सफलता के सिंहासन पर आरूढ़ होगा।

विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों की पहुंच आज भी भारत भर में है। बिहार की राजनीतिक संस्कृति इस विविधता का सम्मान करती आयी है। आज भी ये धर्मावलम्बी पूरे बिहार में फल–फूल रहे हैं। इस विविधता के विरूद्ध आज की राजनीति खड़ी हो गयी है। इस राजनीतिक उभार ने लोगों के जनमानस को प्रभावित किया है।

उग्रता बढ़ी है, सेकुलरिज्म को सम्मान की दृष्टि से न देखनेवालों की संख्या बढ़ गयी है।

मुझे यह बात समझ में नहीं आती है कि जो लोग कल तक सेकुलरिज्म को अच्छा मानते थे, उनमें से कई आज चुप हो गए हैं। सवाल उठ सकता है कि आपका सेकुलरिज्म सरक. ारी समर्थन से क्यों चलता था? सरकार के धन से होने वाले कार्यक्रमों में बोलने वाले लोगों की आज बौद्धिक क्षमता तो नहीं घट जानी चाहिए थी! आपके पास सरकारी धन नहीं है, मगर आपकी वैचारिकी तो है! ऐसे वैचारिक लोगों की सक्रियता में बहुत कमी आ गयी है।
कट्टरता पागलपन है और सब्र अक्ल का दूसरा नाम है। यदि आप अपनी वैचारिकी को ठीक मानते हैं तो सब्र रखिए, प्रयास करते रहिये, कट्टरता और पागलपन की उम्र छोटी होती है, इनसे सीधे टकराना सम्भव नहीं है। उग्रता को पालनेवाले लोगों में से ज्यादातर को बदलते हुए देखा गया है। जनता इन भावों को स्थायी रूप से लेकर नहीं चल पाती है। इन भावों के असली वाहक इनके राजनीतिक लोग होते हैं, जिनका असर एक समय के बाद ख़त्म हो जाता है।

यह दुनिया सब के रहने के लिए बनी है। उदारता और कट्टरता की लड़ाई पहले भी हुई है। फासीवाद और नाजीवाद के पनपने के पीछे भी कुछ ठोस कारण थे। राष्ट्रवाद की वह प्रबल भावना अपनी कट्टरता के कारण ही ध्वस्त हुई और पूरी दुनिया में बदनाम हुई। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को भी जर्मनी के राष्ट्रवाद में उत्साहजनक बातें दिखायी पड़ी थीं। उन्होंने 'साहित्य का महत्त्व' नाम के लेख में जर्मनी के शक्तिशाली रूप में उभरने की प्रशंसा की थी। उनका ख्याल था कि जर्मनी को निराशा से उबारकर आत्मगौरव से भर देने में वहां के राष्ट्रवादी साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है।
बिहार में उग्र राष्ट्रवाद का जो रूप दिखायी पड़ रहा है, उसका सन्दर्भ भारत की राजनीति से जुड़ता है। विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के प्रति निरपेक्ष होकर न्यायपूर्ण तरीके से राजनीति करने की परंपरा कभी नहीं बन पायी है। राजनीति करनेवाले के सामने मजबूरी होती है कि वह इन सब बातों में भी रुचि ले! वह अपने नफा–नुकसान का ध्यान रखकर इस रुचि को बदलता रहा है। राजनीतिक कट्टरता दोनों मार्गों में देखी गयी है। उनका अंत भी देखा गया है। आज की उग्रता की भी उम्र लंबी नहीं होगी! दुर्दशा को केवल कल्पना और व्याख्या के सहारे नहीं समझाया जा सकता है। इतिहास की शक्तियां मानव के असंगत रूपों को दिखाने में ज्यादा सक्षम होती हैं।

(बिहार के विक्रम के रहने वाले लेखक संप्रति वाराणसी में हैं। 'जाति के प्रश्न पर कबीर' इनकी चर्चित पुस्तक।)

■

दूसरी आस्थाओं के प्रति सद्भाव जरूरी

प्रीति सिन्हा

क्या वाकई देश आजादी की 75वीं सालगिरह मना रहा है? देश से मतलब अगर अवाम से है तो क्या है अवाम के पास मनाने के लिए? घर–घर फैली बेरोजगारी? कामकाजी उम्र के आधे लोगों का बेरोजगार होना? जीना दूभर करती महंगाई? दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गैर बराबरी? लिखने बोलने की आजादी पर बढ़ते पहरे? लग तो ऐसा रहा है कि लोग हांके जा रहे हैं। उनमें 'आजादी का अमृत महोत्सव' का उन्माद भरा जा रहा है। एलान हो गया है 'हर घर तिरंगा' और जोर जबरदस्ती, फूहड़ता और उन्माद का नया सिलसिला शुरू हो गया है। खबर है कि डाकदूत कर्मियों तक को जबरन दस–दस झंडे दिए जा रहे हैं बेचने को। वह भी इस धमकी के साथ कि नहीं बेचा तो पैसे उनकी तनख्वाह से काट लिए जाएंगे और झंडे भी उल्टे सीधे, आड़े–तिरछे, कहीं अधसिले तो कहीं उधड़े! आजादी और लोकतंत्र का जश्न तो दिल से मनाने की बात है। स्वेच्छा से मनाने की बात है। सरकारी फरमानों से नहीं।
एलान कर दिया गया है कि हम अमृत काल में पहुंच चुके हैं। लेकिन हर आम जन और हर आम परिवार जानता है कि यह कैसा काल है। देश के 90 फीसद मेहनतकश लोगों की मासिक आमदनी 25,000 रुपए से भी कम है और 15 फीसद लोगों की तो माहवार 5,000 रुपए से भी कम। मेहनतकशों और नौजवानों की खुदकुशी के मामले बढ़ते जा रहे हैं। 'आर्थिक बढ़त के फायदे कुछ ही हाथों में सिमटे रहे हैं और इसने गरीबों को और भी हाशिए पर धकेल दिया है और इस तरह उन्हें और भी मजलूम बना दिया है'। यह सब तो प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद द्वारा ही कराए गए हालिया अध्ययन में कहा गया है। किसानों को साल में 6000 रुपए तीन किश्तों में देकर यानी 16 रुपए 43 पैसे रोज देने को भी बहुत बड़ी दियानतदारी के रूप में प्रचारित किया जाता है और बड़े–बड़े जलसे कर उनसे पूछा भी जाता है कि आखिर इतने सारे पैसों का वे करते क्या हैं!
आजादी चाहे जैसी भी मिली थी, जैसे भी माहौल में मिली थी, वह जनता के महान संघर्षों और कुर्बानियों का नतीजा थी। उसके बाद बहुलतावादी समतावादी समाज, उदार धर्मनिरपेक्ष और नागरिक आजादियों की संवैधानिक गारंटी के साथ राज व्यवस्था और हर बालिग को मताधिकार के साथ बहुदलीय लोकतंत्र की ओर सफर शुरु हुआ था जिसके मूलमंत्र थे 'समस्त नागरिकों को सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता; प्रतिष्ठा और अवसर की समता' सुनिश्चित करना और उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाना जिन्हें संविधान की

प्रस्तावना में ही दर्ज कर दिया गया था।

जहां तक बिहार के योगदान की बात है तो 1857 के पहले स्वतंत्रता संग्राम से लेकर आजादी तक बिहार की उसमें अग्रणी भूमिका रही थी। आजादी के बाद भी राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में बिहार आगे ही रहा। त्रिवेणी संघ और स्वामी सहजानंद की किसान सभा से लेकर कम्युनिस्ट आंदोलन, सन चौहत्तर का आंदोलन, और फिर नक्सलवादी आंदोलन ने बिहार का ही जनतांत्रीकरण नहीं किया बल्कि पूरे देश को राह दिखाई, पूरे देश को प्रेरित किया। सबसे ज्यादा शिक्षित लोग और नौकरशाह बिहार ने दिए। एक जमाने में बिहार की शिक्षा और शोध संस्थाओं का पूरे देश में बड़ा सम्मान था। लेकिन केंद्रीय नियंत्रण और आजादी के बाद पूंजीवादी विकास की अंदरूनी उपनिवेशी प्रक्रिया में बिहार दिन–ब–दिन गर्त में डूबता गया। यहां के पढ़े–लिखे लोग, सुखी संपन्न लोग राज्य और देश छोड़ने लगे। यह प्रक्रिया वैसे तो पूरे देश में भी चली। लेकिन बिहार में इसका जोर ज्यादा रहा। आज बिहार विकास के हर पैमाने पर पीछे है. उसका योगदान अब पढ़े–लिखे बौद्धिक कामगारों से लेकर दैनिक मजदूरी करने वालों को देश के समृद्ध इलाकों में भेजना भर रह गया है। इससे ज्यादा बेपरवाही और बेदर्दी का आलम क्या होगा कि कालेजों और विश्वविद्यालयों में दशकों से शिक्षकों के पद खाली पड़े हैं।

बिहार को अपक्षरण से बचाने का रास्ता तो एक ही है और वह है राज्य को संकीर्णता और अपक्षरण में ले जा रही ताकतों के खिलाफ जन संघर्ष। इन ताकतों का राष्ट्रवाद से कोई लेना देना नहीं है। उनका मकसद है राष्ट्रवाद का उन्माद फैलाकर राज करना। वे वह सब कुछ कर रहे हैं जिनके लिए हिंदू सभ्यता और जीवन शैली में कोई जगह नहीं है। कोई चाहे तो इसे धर्म कह सकता है। लेकिन सुप्रीम कोर्ट भी फर्मा चुकी है कि हिंदूइज्म तो जीवन शैली है, धर्म नहीं। विद्वान दार्शनिक और राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन भी ऐसा ही मानते हैं और 1926 में अपने मशहूर ऑक्सफोर्ड व्याख्यानों में उन्होंने कहा था: 'द मेन नोट ऑफ हिंदुइज्म इज वन ऑफ रेस्पेक्ट एंड गुड विल फॉर अदर क्रिड्स'। मतलब यह कि हिंदू सभ्यता संस्कृति की मुख्य बात है दूसरी आस्थाओं के लिए आदर और सद्भाव (एस राधाकृष्णन, द हिंदू वे ऑफ लाइफ, हार्पर कोलिंस पब्लिशर्स इंडिया, 2018, पेज 22)। ये कोई नई बात नहीं थी। यही सदियों सहस्त्राब्दियों से हिंदू सभ्यता संस्कृति की खास बात रही है। विवेकानंद ने भी 1893 में शिकागो धर्म संसद में अपने मशहूर भाषण में कहा था:

आई एम प्राउड टू बिलांग टू ए रिलीजन व्हिच हैज टॉट द वर्ल्ड बोथ टॉलरेंस एंड यूनिवर्सल एक्सेपटेंस. वी बिलीव नॉट ओनली इन यूनिवर्सल टोलेरेशन, बट वी एक्सेप्ट ऑल रिलिजन्स इज ट्रू। ('मुझे गर्व है कि मैं उस धर्म से हूं जिसने दुनिया को सहनशीलता भी सिखाई है और सार्वभौमिक स्वीकृति भी। हम सार्वभौमिक सहनशीलता पर यकीन ही नहीं करते बल्कि हम तमाम धर्मों को सच मानते हैं।')

लेकिन आज हिंदुत्व के नाम पर जो कुछ हो रहा है वह सब हिंदू सभ्यता संस्कृति के बिलकुल खिलाफ है। इसलिए खुद को हिंदू मानने वालों को सबसे पहले संकीर्णता और अपक्षरण फैला रही ताकतों के खिलाफ संघर्ष में उतरना चाहिए।

दरअसल, इन सब का रिश्ता गैर बराबरी को बेतहाशा बढ़ाने, कॉरपोरेट के मुनाफों को बढ़ाने और देश के संसाधनों को उनके हवाले करते जाने और बदले में मोटे चंदे पार्टी फंड में हासिल करने और इन सबके जरिये रसूखदार लोगों द्वारा खुद के लिए भी धन दौलत का बेहिसाब अंबार लगाने की प्रक्रिया का हिस्सा है। यह पूरी प्रक्रिया बेरोजगारी और बदहाली को बढ़ाती है और उससे ध्यान भटकाने और व्यापक जनता की एकजुटता को रोकने के लिए यह संकीर्णता, सांप्रदायिकता, धर्मांधता और दकियानूसी को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसलिए बिना इस पूरी प्रक्रिया के खिलाफ संघर्ष किए संकीर्णता और अपक्षरण को भी नहीं रोका जा सकता।

समाजवादी, साम्यवादी और मंडल आंदोलन के साथ–साथ बिहार क्रांतिकारी साम्यवादी आंदोलन की भी जमीन रहा है जैसा कि ऊपर हमने कहा भी है। इन आंदोलनों ने बिहार को काफी बदला है। मेहनतकशों, और खास कर दलितों, खेत मजदूरों, पिछड़े वर्गों को इज्जत दी है। उन्हें अपने हकों का अहसास कराया है। समाज का जनतांत्रीकरण किया है। कुछ हद तक आर्थिक तौर पर भी उनका जीवन बेहतर किया है। लेकिन यह सिलसिला रुक–सा गया है। बावजूद इसके कि बदलाव के संघर्ष हो रहे हैं। जरूरत है कि बदलाव के संघर्ष में लगी ताकतें अब तक के अनुभवों के सबकों की रौशनी में संघर्ष को आगे ले जाएं।

जैसा कि ऊपर भी हमने कहा है, बिहार पूंजीवादी विकास की आंतरिक उपनिवेशी प्रक्रिया का शिकार रहा है। और अब तो पूंजीवादी विकास का सुनहरा युग कब का बीत चुका है। सो आंतरिक उपनिवेशी प्रक्रिया निरंतर भीषण ही होती गई है और यही सिलसिला आगे भी चलता रहेगा अगर इसके खिलाफ संघर्ष नहीं हुए तो और अब तो बहुत ही घटिया किस्म की पूंजीवादी प्रक्रिया देश में चल रही है जो उत्पादन के जरिए नहीं सरकार से मिलीभगत और सट्टेबाजी के जरिए मुनाफा बटोरने और दौलत बनाने में लगी है। ऐसे माहौल में विकास का कोई रास्ता बताना खामखयाली ही होगी।

हमने देखा है कि बीते कोई दो दशक में राज्य भर में सड़कों की दशा बेहतर हुई है। लेकिन क्या रोजगार बढ़े हैं? क्या लोगों का रहन–सहन बेहतर हुआ है? राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आंकड़े बताते हैं कि छह महीने से छह साल तक खून की कमी के शिकार बच्चों का अनुपात 2015–16 में 63.5 फीसद था तो 2019–20 में 69.4 फीसद हो गया। इसी बीच 15 से 49 साल की गर्भवती औरतों में खून की कमी की शिकार औरतों का अनुपात 58.3 फीसद से बढ़ कर 63.1 फीसद, अन्य औरतों में 60.4 फीसद से बढ़ कर 63.6 फीसद, 15 से 49 साल की तमाम औरतों में 60.3 फीसद से बढ़ कर 63.5 फीसद और 15 से 19 साल की लड़कियों में 61 फीसद से बढ़ कर 65.7 फीसद हो गया। बहरहाल, पूरे देश के स्तर पर भी तस्वीर कुछ ऐसी ही है। बिहार में और ज्यादा खराब है। इसलिए कभी सड़कें बन जाएंगी, कोई और सरकार आएगी तो कुछ और हो जाएगा। लेकिन आम जनता की दशा नहीं बदलेगी। बेरोजगारी बदहाली का सिलसिला मौजूदा व्यवस्था के रहते हुए नहीं बदलेगा। इसलिए किसी भ्रम में नहीं रहना चाहिए। जरूरत है सत्ता नहीं व्यवस्था बदलने की।

(लेखिका खगौल में रहती हैं। संप्रति मासिक फिलहाल की सम्पादक हैं।)

■

सामाजिक क्रांति अभी भी अधूरी है

आनंद बिहारी

इसमें कोई शक नहीं है कि प्राचीन बिहार सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक चेतना का एक मजबूत स्तंभ था। चंद्रगुप्त, अशोक और शेरशाह जैसे शासकों ने राजनीति का उच्चतर आदर्श स्थापित किया तो गौतम बुद्ध, महावीर, गुरु गोविंद सिंह जैसे धर्मगुरुओं ने मानवता का पाठ पढ़ाया। लोकतंत्र का बीजारोपन भी इन्हीं महपुरुषों के व्यक्तित्व की आभा से संभव हुआ। बिहार की धरती का यह सबसे बड़ा सौभाग्य है। इन महापुरुषों की साधना, त्याग और विशिष्ट चेतना ने पूरे विश्व को आलोकित किया और बिहार की धरती को श्रेष्ठ उपलब्धियों से नवाजा। उन्हीं श्रेष्ठ उपलब्धियों से बिहार की संस्कृति निर्मित हुई, जिसपर हम सदियों से गर्व करते आ रहे हैं। परंतु सन् 47 में मिली आजादी के बाद भारत एक नये युग में प्रवेश करता है। यह नया युग जनतंत्र का युग है। इसमें जनता की समस्याओं को महत्व मिलना था। इसलिए जनता को भी अतिरिक्त जिम्मेवारी निभानी थी। लेकिन जनता तो अपनी जिम्मेदारी तब निभाती, जब उसे जनतंत्र का मतलब पता होता। जनतंत्र की सफलता जनता की प्रतिरोध क्षमता और एकता के बल पर निर्भर करती है। हमसे यहीं चूक हुई है, हम समाज को जाति, धर्म और संप्रदाय के दलदल से बाहर नहीं निकाल सके। भारतीय जनतंत्र को व्यापक सामाजिक क्रांति की आवश्यकता थी, जो आजतक पूरी नहीं हुई। वर्तमान दौर में जनतंत्र को जो हम असफल होते हुए देख रहे हैं, वस्तुतः वह जनतंत्र की असफलता नहीं है, जनतंत्र के संचालकों की असफलता है। हमारे देश में जनतंत्र के संचालक भ्रष्ट हैं, वे पूंजीवाद और सामंतवाद के गुलाम हैं। इसलिए थोड़े समय के लिए ऐसा लग सकता है कि जनतंत्र खतरे में है, लेकिन जैसे ही देश में एक व्यापक सामाजिक क्रांति घटित होगी, जनतंत्र को सफलता की कुंजी और ताकत दोनों स्वतः मिल जाएगी। रही बात, जनतंत्र की बहाली में बिहार के योगदान की, तो मैं इतना ही कहूंगा कि बिहार इस मामले में बहुत पीछे है। बिहार में जनतंत्र का लाभ सीमित लोगों को ही मिला है। बहुसंख्यक जनता इसके स्वाद से अभी बहुत दूर है। जनतंत्र के विकास के लिए बिहार में अबतक जो भी प्रयास हुए हैं वे अपर्याप्त हैं। इस सच्चाई को हमें स्वीरकारना चाहिए।

जिस समाज में वैचारिक व सांस्कृतिक विविधता होती है उस समाज का सूरज कभी अस्त नहीं होता। शर्त यह है कि उस समाज के लोग वैज्ञानिक सोच वाले हों। वैज्ञानिक सोच के अभाव में वैचारिक व सांस्कृतिक विविधता उस समाज की सबसे बड़ी समस्याा बन जाती है। विचार और संस्कृतियां कोई जड़ वस्तु नहीं हैं, नवीनता इनकी खुराक है। वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया चिंतन संस्कृति, धर्म और समाज को नई ताकत देता है लेकिन जैसे ही हम धर्म और संस्कृति के रक्षार्थ उसे नवीनता के स्पर्श से दूर रखने लग जाते हैं वो जड़ हो जाता है। भारत इसी दौर से गुजर रहा है। हिंदुवादी शक्तियों ने हिंदुत्व से उसकी व्यापकता और उसके औदात्य को छीन लिया है। परिणाम स्वरूप एकरेखीय संकीर्णता में आबद्ध हिंदुत्व पूंजीवाद और सामंतवाद के गठजोड़ के आगे कमजोर व असहाय हो चुका है। असहाय अवस्था में कोई उग्रता के साथ चीखने–चिल्लाने और खुद को कष्ट देने लगे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह इस बात का संकेत है कि वह चीज अब खत्म होने वाली है। हिंदुत्व का चोला ओढ़कर पूंजीवादी–सामंतवादी शक्तियों ने हिंदुओं की भावना को व्यावसायिक उत्पाद बना दिया है, जिसे नाना प्रकार से बेचकर अर्थ एवं शक्ति अर्जित की जा रही है। इस स्थिति से निपटने के लिए एक ही उपाय है, पूंजीवाद की जड़ खोदना। इसके लिए हमें जनचेतना हेतु प्रयास करना होगा, शिक्षा को सस्ती एवं उच्च स्तरीय बनाना होगा, लघुस्तरीय व्यावसायिक गतिविधियों को बढ़ावा देना होगा। और सबसे बड़ी बात निम्न मध्यवर्ग के बच्चों को किसी भी हालत में अशिक्षा एवं बेरोजगारी से बचाना होगा; क्योंकि यही लोग अपनी भावुकता में आकर राष्ट्र और धर्म के नाम पर सत्तालोलुपों की चालबाजी का शिकार होते हैं और अंततः अपना तथा अपने देश व धर्म का अहित करते है।

यह सही है कि बिहार में समाजवादी, साम्यवादी और मंडल आंदोलन की जमीन ऊर्वर रही है और उसका लाभ भी बिहार को मिला है। बिहार में जाति को लेकर जागृति आई है। जातीय भेदभाव का बंधन ढीला पड़ा है। अभिजन और बहुजन के बीच जो फांक था उसमें भी कमी आई है। लेकिन केवल कमी आई है, खत्म नहीं हुआ है। कहा जा सकता है कि बदलाव हुए हैं पर वह अपर्याप्त है। बदलाव की प्रक्रिया अभी जारी है। इस प्रक्रिया को तेज करने की आवश्यकता है। इस प्रक्रिया की सबसे बड़ी बाधा है बेरोजगारी। समाज को न्यायपूर्ण बनाने के लिए प्रथम प्रयास आर्थिक स्तर पर किया जाना चाहिए। अगर आदमी पेट की समस्या से निपट ले तो सामाजिक समस्याएं बड़ी नहीं रह जातीं।

बिहार में कुशल नेतृत्व और कुशल श्रम की बहुत कमी है। विशिष्ट प्रतिभाएं अवसर की तलाश में पलायन कर जाती हैं। विशिष्ट प्रतिभाएं ही कुशल नेतृत्व दे सकती हैं। उन्हें बिहार में रह कर अवसर का सृजन करना चाहिए, न कि अवसर की तलाश में पलायन। विशिष्ट प्रतिभाओं को बिहार में रह कर ही काम करने के लिए प्रेरित किया जा सके तो कुशल श्रम का उत्पादन किया जा सकता है। उस परिस्थिति में कुशल नेतृत्व और कुशल श्रम दोनों की कमी दूर हो जाएगी। परिणामस्वरूप बेरोजगारी दूर होगी, गरीबी एवं अमीरी की खाई कम होगी और समृद्धि का नया रास्ता खुलेगा। स्मरण रहे, किसी भी समाज को उन्नत बनाने के लिए विशिष्ट प्रतिभाओं को ही संघर्ष करना पड़ता है, उनके त्याग और साधना से ही समाज को रोशनी मिलती है। जिस समाज की विशिष्ट प्रतिभाएं अपनी जिम्मेदारी से मुंह मोड़ लें, या उच्च जीवन मूल्यों से रहित हो जाएं, उस समाज का कोई भविष्य नहीं, उसका कोई इतिहास नहीं और न ही उसकी कोई संस्कृति हो सकती है। बिहार इसी दुर्भाग्य का शिकार है।

(लेखक गोपालगंज के रहने वाले हैं। संप्रति 'सत्राची' पत्रिका के संपादक हैं।)

■

आधारभूत परिवर्तन नहीं

राजू रंजन प्रसाद

बिहार गणतंत्र की जन्मभूमि रहा है, इस बात को स्थापित–प्रचारित करने की आज कोई 'ऐतिहासिक आवश्यकता' नहीं है। दरअसल, अंग्रेज जब भारत आये तो जोर–शोर से प्रचारित किया कि भारतीयों का अपना कोई इतिहास नहीं है, बल्कि इतिहास के नाम पर विदेशी आक्रमण की कुछ घटनाएं हैं। यह भी कहा गया कि वे दुनिया की श्रेष्ठ और सभ्य प्रजाति हैं इसलिए उनका भारत आगमन यहां के पिछड़े लोगों को सभ्य बनाना है। इसको उन्होंने 'सभ्य जातियों का भार' (व्हाइट मैन्स बर्डेन) कहा। अंग्रेजों ने भारत का जो चित्र खींचा था उसमें यह 'सपेरों और नटों का देश' था जो निरे भाववादी थे और जिनको राजसत्ता से कोई मतलब नहीं था। आज भी तुलसीदास हमारे कानों में 'कोउ नृप होउ' के गीत गुनगुना जाते हैं। इसलिए भारत का राष्ट्रवाद इन स्थापनाओं की 'प्रतिक्रिया' में पैदा हुआ हुआ। शायद इसीलिए

जवाहरलाल नेहरू भारतीय राष्ट्रवाद को 'प्रतिक्रिया' का राष्ट्रवाद कहते हैं। इस प्रतिक्रिया में कई बार हम 'अनैतिहासिक' स्थापनाएं भी गढ़ते रहे। खुद नेहरू को 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में कहना पड़ा कि गुप्तकाल राष्ट्रीयता के उदय का काल था। इन्हीं स्थापनाओं में से एक यह है कि 'बिहार गणतंत्र की जन्मभूमि है।' विभिन्न आंदोलनों ने बिहार की समाजिक–राजनीतिक चेतना को परिवर्तित तो किया किन्तु आधारभूत परिवर्तन की ओर कोई उल्लेखनीय कदम नहीं उठाया। बिहार आज भी गांवों में बसता है। बचपन में हमलोग भारत पर लिखे जानेवाले निबंधों की शुरुआत इस वाक्य से करते थे कि वह एक 'कृषिप्रधान देश' है। काफी बाद में पता चला कि कृषि प्रधान होने का मतलब होता है कि भारत औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ देश है। आज जब बिहार को गांवों का राज्य कहा जाता है तो उसका निहितार्थ है कि उद्योग–धन्धों वाले शहरों का अभाव है। जो शहर हैं भी वे दरअसल गांव ही हैं। आज पटना के मोहल्लों की बसावट का अध्ययन कीजिए तो पता चलेगा कि शहर के भीतर जाति की कॉलोनियां हैं। यह सब रोजगार के अवसर सृजित होने के परिणाम हैं। हमारे पास आज भी परंपरागत पेशे ही विकल्प हैं। दूसरा विकल्प सरकारी नौकरी है। आज भी अगर यूपीएससी की परीक्षाओं में बिहारी अव्वल आ रहे हैं तो एकमात्र कारण है कि रोजगार की अवसरों की कमी है तथा सत्ता की भूख बनी हुई है। यहां कॉलेज का प्रोफेसर थाने का दारोगा बनने की अभिलाषा रखता है। यह लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं है।

('प्राचीन भारत में वर्चस्व एवं प्रतिरोध' लेखक की नई पुस्तक है। संप्रति मुजफ्फरपुर के एक कॉलेज में प्राध्यापक हैं।)

■

बिहार में लोकतंत्र अधिक समावेशी

संजीव चंदन

मुहावरों में बिहार ज्ञान और लोकतंत्र की भूमि है। लेकिन क्या वह लोकतंत्र जनता के लिए, जनता का लोकतंत्र था? इसकी पड़ताल होनी चाहिए। बिहार की जनतांत्रिकता को मापने का एक तरीका यह भी हो सकता है, कि लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में बिहार कितना समावेशी हुआ है? सत्ता और व्यवस्था में विभिन्न सामाजिक इकाइयों की भागीदारी कितनी हुई है? इस लिहाज से बिहार ने संविधान लागू होने के 20 सालों के भीतर ही एक बेहतर दिशा अख्तियार कर लिया था। कर्पूरी ठाकुर की सरकार और उनके द्वारा तंत्र को अधिक समावेशी बनाने की पहल को इसी दिशा में बढ़ा हुआ कदम माना जा सकता है। जो बिरवा उस वक्त रोपा गया, वह बिहार के छात्र आंदोलन में और बाद के दिनों में मंडल आयोग के लागू होने से हुए प्रभाव के जरिये पल्लवित हुआ। 9वां दशक एक ऐसा दशक है, जहां से बिहार ने अपने समावेशी चरण को अधिक गति दे दी। आज बिहार का लोकतंत्र अपने निचले निकायों से लेकर विधान सभा तक इस समावेश का एक बेहतरीन उदाहरण है।

बिहार में एक विशेष घटना के रूप में बिहार की पहली महिला मुख्यमंत्री को भी देखा जाना चाहिए। पिछड़े समाज से आने वाली एक महिला, जो कायदे से स्कूल नहीं जा सकी थीं, बिहार में मुख्यमंत्री बनती हैं और अगले 7–8 सालों तक प्रशासन का सफल संचालन करती हैं। कोई कह सकता है कि यह एक पारिवारिक निर्णय के कारण संभव हुआ अथवा कुछ आलोचक यह कहते रहे हैं कि यह एक खड़ाऊं प्रशासन था। लेकिन लोकतंत्र राजा–रानी का तंत्र नहीं होता है। सूबे का नेतृत्व करने का जिसे अवसर मिलता है उसे अपनी राजनीतिक और प्रशासनिक प्रतिभा सिद्ध करनी ही होती है। मुख्यमंत्री के तौर पर उनके निर्णय, उनका संवाद कौशल, जनसभाओं को सम्बोधित करने में निंरतर बनने वाली सम्प्रेषणीयता अवसर मिलने के असर को बयान करती है। भागीदारी का यह असर और प्रभाव इन वर्षों में ग्राम पंचायतों में चुन कर आयीं और काम कर रही स्त्रियों के जरिये भी समझा जा सकता है। वह दिन दूर नहीं जब मुखियापति, सरपंचपति जैसे लोकतंत्र के व्यंग्य अस्तित्व में ही नहीं रह जाए। यही बिहार के लोकतंत्र की खूबसूरती है।

ज्ञान के केंद्र के रूप में भी बिहार अपनी ऐतिहासिकता में देश को एक दिशा देता रहा है। यह जरूर है कि पिछले कुछ सालों में संस्थानों का पतन हुआ है। ज्ञान के संस्थानों को जैसा होना चाहिए था वैसा नहीं रहे। नये शोध और ज्ञान की गति रुकी है। अब यह नेतृत्व का ही काम है कि वह इस पर गंभीरता से काम करे, क्योंकि शिक्षा का दरवाजा अब अत्यंत गरीब समूहों के लिए खुल गया है। सरकार के संस्थानों में बहुसंख्यक

समुदाय से विद्यार्थी पहुंच रहे हैं ऐसी स्थिति में इन संस्थानों को गतिशील बनाने की सबसे अधिक जरूरत है।

बिहार अपनी परम्परा में किसी भी कट्टर मतान्धता के खिलाफ खड़ा रहा है। साम्प्रदायिकता के खिलाफ ही इस राज्य का जनादेश रहा है। पड़ोसी राज्य में कई सारी प्रगति विरोधी गतिविधियां बहुत तेजी से अंगीकार होती रही हैं, लेकिन समग्र बिहार में उसकी गति थम जाया करती रही है। ब्राह्मणवाद और उग्र हिंदूवाद के खिलाफ इस राज्य की परम्परा होने के कारण ही इसके एक बड़े हिस्से को वेद विरोधी माना जाता रहा है। आजादी के बाद की सरकारों ने भी कमोवेश उग्र हिंदूवाद पर

‘ बिहार अपनी परम्परा में किसी भी कट्टर मतान्धता के खिलाफ खड़ा रहा है। साम्प्रदायिकता के खिलाफ ही इस राज्य का जनादेश रहा है। पड़ोसी राज्य में कई सारी प्रगति विरोधी गतिविधियां बहुत तेजी से अंगीकार होती रही हैं, लेकिन समग्र बिहार में उसकी गति थम जाया करती रही है। ब्राह्मणवाद और उग्र हिंदूवाद के खिलाफ इस राज्य की परम्परा होने के कारण ही इसके एक बड़े हिस्से को वेद विरोधी माना जाता रहा है। आजादी के बाद की सरकारों ने भी कमोवेश उग्र हिंदूवाद पर नकेल कस रखी थी। ऐसा भी नहीं था कि इस राज्य में साम्प्रदायिक उन्माद नहीं झेले। सबसे लम्बे दिनों तक चलने वाला भागलपुर दंगा इसकी ऐतिहासिक विरासत पर एक कलंक की तरह है। उन्माद की एक धारा किसी भी समाज में होती ही है, लेकिन बिहार में वह मुख्यधारा कभी नहीं बन पायी। ’

नकेल कस रखी थी। ऐसा भी नहीं था कि इस राज्य में साम्प्रदायिक उन्माद नहीं झेले। सबसे लम्बे दिनों तक चलने वाला भागलपुर दंगा इसकी ऐतिहासिक विरासत पर एक कलंक की तरह है। उन्माद की एक धारा किसी भी समाज में होती ही है, लेकिन बिहार में वह मुख्यधारा कभी नहीं बन पायी।

बिहार सांस्कृतिक रूप से बौद्ध, जैन परम्परा का तो रहा ही है, यह देवी परम्परा की भी धरती रही है, लोकायतों की धरती रही है। पशुबलि आधारित हिंसक और वर्चस्ववादी धार्मिकता और उसके प्रतीकों के खिलाफ रहा है। लेकिन आजकल सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की यह परम्परा बिहार में जड़ जमाती देखी जा सकती है, जो उसी रूप में तो नहीं लेकिन बदले स्वरूप और अर्थ के साथ हावी हो रही है। सबसे खतरनाक है कि उन्माद के कारण जनता के रोटी–रोजगार–स्वास्थ्य के सवालों का गौण हो जाना। बिहार में फिर से नीतीश कुमार के अगुआई में बनी महागठबंधन सरकार ने अपना इरादा इस उन्माद के खिलाफ जाहिर कर दिया है। यह एक उम्मीद की तरह है।

बिहार परिवर्तनकामी आंदोलनों का केंद्र रहा है। साम्यवादी आंदोलन ने बिहार के गरीबों, दलितों में साहस पैदा किया, मंडल आयोग के लागू होने की घटना के साथ–साथ समाजवादी आंदोलन की धारा ने साहस को स्थायित्व और स्वर दिया है। इस लिहाज मंडल आयोग के लागू होने के बाद बिहार के समाज में गुणात्मक फर्क को चिह्नित किया जा सकता है। यह जरूर है कि इसपर शोधपरक आंकड़ों की अभी जरूरत है। मंडल आयोग की सिफारिशों में से एक के लागू होने के बाद के बदलाव को साहित्य और सरोकारी लेखन ने जरूर दर्ज किया है। जैसे रामधारी सिंह दिवाकर की किताब ‘जहां आपने गांव’ पढ़ी थी पिछले दिनों। वह एक तस्वीर पेश करती है बिहार के बदले गांवों की। इस बदलाव में लालू प्रसाद और राबड़ी देवी की अहम् भूमिका रही है।

90 के बाद इन आंदोलनों का एक कोर्स पूरा हो चुका है, लगभग 30 साल। अभी दूसरे कोर्स की जिम्मेवारी नयी राजनीतिक पीढ़ी पर है। गरीबी और अमीरी की खाई वर्तमान अर्थव्यवस्था की विश्वव्यापी समस्या है। कमोबेश यह हर राज्य की समस्या है। लेकिन बिहार की स्थिति बेहद दयनीय है। जरूरत है राज्य की कल्याणकारी भूमिका और राज्य के अधीन जरूरी सेवाओं और उद्योगों को बनाये रखने की। केंद्र सरकार की आर्थिक नीतियां और विनाशकारी है। इस खाई को बढ़ाने वाली है, जिसका असर राज्य पर भी है। राज्य की वर्तमान सरकार ने भी विकास के विश्व बैंक मॉडल को ही अपनाया है। राज्य में सस्टेनेबल विकास, समेकित विकास की योजना बनाने की जरूरत है। स्वास्थ्य और शिक्षा को समुन्नत किया जाना चाहिए तथा कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विकास का अर्थ चमचमाती सड़कों से बढ़कर होना चाहिए। हर इंसान के हाथ में काम, हर इंसान को शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा और रोटी ही विकास का मापदंड हो सकता है। इसके लिए बिहार की स्थितियों के अनुरूप उद्योग–नीति, जमीनों और संसाधनों का वितरण, यानी हदबंदी कायदे से लागू करने की राजनीतिक इच्छा शक्ति की जरूरत है।

आखिर में, मैं अपनी ओर से इन 75 सालों की एक उपलब्धि जरूर दर्ज करना चाहूंगा। ग्रामीण से लेकर शहरी समाज में स्त्रियों की गत्यात्मकता बढ़ी है, शिक्षा और रोजगार के अवसर उनके लिए अधिक बने हैं, राजनीतिक भागीदारी बढ़ी है। यह एक क्रमिक बदलाव है, इसे जारी रखने की जरूरत है।

(जहानाबाद के रहनेवाले लेखक, ‘स्त्रीकाल’ के संस्थापक संपादक हैं।)

■

कैसा अमृत काल जहां सच बोलना विषपान है

डा. सीमा

यह साल देश की आजादी का 75 वां साल है, जिसे आजादी के अमृत महोत्सव के रूप में मनाया जा रहा है। हाल ही में प्रधानमंत्री ने जर्मनी में ग्रुप 7 के सम्मेलन में भारत को लोकतंत्र की जननी कहा था और देश के हर वर्ग, धर्म, जाति के लोगों के साथ बिना किसी भेदभाव के समान व्यवहार पर जोर दिया था। भारत में लोकतंत्र की जड़ें छठी शताब्दी के लिच्छवी गणराज्य में से निकली हैं जिसकी राजधानी वैशाली आज के बिहार राज्य में स्थित है।

विडंबना यह है कि जब देश आजादी की 75वीं वर्षगांठ को अमृत महोत्सव के रूप में मना रहा है, समाज में नफरत, हिंसा, दमन अत्याचार का जहर अंदर तक फैल चुका है। प्रजातंत्र के मूल सिद्धांतों पर एक–एक कर चोट पहुंचाई जा रही है। संविधान ने हर नागरिक को समान माना है और समान अधिकार दिए हैं। प्रजातंत्र में असीम शक्तियां जनता में निहित हैं पर आज आम जनता को ही गायब कर दिया गया है। जनता आज हिंदू मुस्लिम आदि विभिन्न जातियों, वोटर, लाभार्थी आदि उत्पाद बनकर रह गई है। हाल के वर्षों में सबसे ज्यादा चोट अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को पहुंचाई गई है। ये कैसा अमृत काल है जहां सच बोलना विषपान से कम नहीं है। बोलने की आजादी, प्रेस की आजादी, धार्मिक स्वतंत्रता की आजादी आदि प्रजातंत्र के मूल तत्व हैं पर सबसे ज्यादा हमले इन पर ही हुए हैं। दुर्भाग्यपूर्ण है कि 75 सालों के बाद प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना में हम सफल नहीं हुए हैं और अभी तक आधा सफर भी तय नहीं किया है। हालांकि किसान आंदोलन की सफलता ने यह पुनः स्थापित किया है कि इन मूल्यों को मिटाना इतना आसान नहीं है पर लड़ाई लंबी है और सतत है। बिहार भी इससे अछूता नहीं रह पाया है। पारदर्शिता, प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना के साथ बेरोजगारी, महंगाई, स्वास्थ्य, शिक्षा जैसे हर जरूरी मोर्चे पर सरकारें असफल रही हैं। वर्षों तक डबल इंजन की सरकार रहने पर भी बिहार विकास के हर मानक पर निचले स्तरों पर रहा है। सड़कों का निर्माण तो हुआ है पर उससे पलायन ही हुआ है। रोजगार और उन्नति के साधन नहीं आये। वहीं समाज में मूल्यों का पतन धर्म, जाति आधारित राजनीति, उग्र राष्ट्रवाद और हिंदुत्व ने वहां के लोगों के बीच दूरियां बढ़ाई हैं। धर्म ने वर्षों से समाज को जोड़ा ही था। बिहार तो कई धर्मों की जन्म और कर्मभूमि भी रही है। विषम परिस्थितियों में भी बिहार की जनता ने अपना संघर्ष और अपनी लड़ाई जारी रखी है जिसके परिणाम स्वरूप यहां कई आंदोलनों ने जन्म लिया। जयप्रकाश नारायण के आह्वान पर 70

के दशक में जनता ने एक संपूर्ण क्रांति को सफल बनाया। जेपी अपने आंदोलन के द्वारा समाज के कमजोर, दबे कुचले को सत्ता के शीर्ष पर पहुंचाना चाहते थे।

90 के दशक में इसी आंदोलन से निकले नेताओं के नेतृत्व में बिहार ने एक और आंदोलन का मूड बनाया और सबकी भागीदारी और बराबरी के लिए एक ऐसी सरकार चुनी जो एक बड़े समुदाय के सपने को सच करने को तत्पर दिखी। 90 का शुरुआती दशक काफी आशाओं और उम्मीदों से भरा था। मंडल कमीशन का लागू होना उस दौर की बड़ी उपलब्धियों में से एक था, हालांकि विगत वर्षों में सरकारी नौकरियों में कटौती की गई है, और सरकारी उपक्रमों को निजी हाथों में सौंपा गया है, इसने अलग तरह की चुनौतियां पैदा की हैं। आरक्षण के प्रावधान को कई प्रकार से निष्क्रिय करने की कोशिशें लगातार जारी है। इस बदलाव की अहम बात यह थी कि पिछड़ी और अनुसूचित जाति जनजाति के लोग अपनी जातीय पहचान के साथ सहज होते दिखे। मैं इस बदलाव को बड़ा बदलाव मानती हूं। जिन्होंने ने भी 90 के दशक के बारे में पढ़ा, जाना और जिया है इस बदलाव को समझ पाएंगे। पर बिहार अभी भी आर्थिक, शैक्षणिक रोजगार, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में बहुत पीछे है। अच्छी शिक्षा प्रणाली किसी भी समाज के विकास में अहम है इस पर काम करने की बहुत जरूरत है। ऐसी शिक्षा बिहार को विकास के रास्ते पर लाने में सहायक होगी।

(लेखिका बिहार से हैं। संप्रति दिल्ली इनका ठौर है। विभिन्न विषयों पर लिखने–पढ़ने में इनकी गहरी अभिरुचि है।)

■

राजनीतिक सशक्तीकरण, लेकिन समग्र विकास नहीं

मनोरमा

देश आज आजादी और लोकतंत्र की 75वीं वर्षगांठ मना रहा है। ये मौका उत्सव का है, लेकिन साथ ही थोड़ा ठहर कर मूल्यांकन करने का भी है कि 75 साल के हासिल के साथ जो पूरे नहीं हुए उन अधूरे छूट गए लक्ष्यों, उम्मीदों और आकांक्षाओं पर हम विचार करें। बीते कुछ सालों में आजादी के मायने और लक्ष्य–दोनों संकुचित हुए हैं। संवैधानिक संस्थाएं और कमजोर हुई हैं, लोकतंत्र का चौथा स्तंभ मुख्यधारा की मीडिया अपनी भूमिका और जिम्मेदारी में जनपक्षधर कम और सरकार का माउथपीस ज्यादा बन गया है। बीते सालों में संविधान को लगातार कमजोर करने की कोशिश की गई हैं, संवैधानिक संस्थाएं लगातार कमजोर होती गई हैं उनका दुरुपयोग सत्ता पक्ष के द्वारा निजी हित में ज्यादा किया जाता रहा है, जुडिशियरी तक सत्ता के प्रभाव से संचालित होती रही है।

भारतीय लोकतंत्र के 75 साल के इतिहास में तमाम उपलब्धियों के साथ आपातकाल का एक धब्बा भी आता है, लेकिन आज का दौर भी है जब एक अघोषित आपातकाल जारी है, दक्षिणपंथ के उभार और उसके ताकतवर होने का असर देश के धर्मनिरपेक्ष उदार लोकतांत्रिक चरित्र पर पड़ा है। देश का माहौल दलितों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों के लिए लगातार मुश्किल बनाया गया है। ब्राह्मणवादी वर्चस्व, क्रोनी कैपिटलिज्म और उग्र हिंदुत्व के उभार के कारण ये परिस्थितियां पनपी हैं।

बेशक बिहार भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। उग्र हिंदुत्व के साथ भाजपा की सोशल इंजीनियरिंग ने भी दलितों, महादलितों और अति पिछड़ों को हिंदुत्व की राजनीति के पाले में किया है, लेकिन फिर भी बिहार की राजनीति अपने एक अलग चरित्र में रही है। आज जब फिर देश का लोकतंत्र चौराहे पर दिशाहीन है, बिहार ने रास्ता दिखाया है। बिहार ने संदेश दिया है विपक्ष के साथ मिलकर चलने का, जो बेशक इस दौर में सबसे जरूरी हस्तक्षेप है!

बिहार हमेशा से राजनीतिक रूप से सचेत आंदोलनों की जमीन रही है। दुनिया के पहले गणतंत्र से लेकर भारत के सबसे विस्तृत मगध साम्राज्य की यही जमीन है। आजादी के आंदोलन से लेकर आपातकाल तक बिहार ने हमेशा पूरे देश की राजनीति को अपने तरीके से प्रभावित किया है। आजादी से पहले ही बिहार के गया, शाहाबाद में त्रिवेणी संघ के माध्यम से सवर्ण जातियों के वर्चस्व को चुनौती दी गई थी। इसका मुकाबला करने के लिए पहली बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर पिछड़ा वर्ग संघ का गठन हुआ।

1960 के दशक का आखिर और 1970 का दशक बिहार की राजनीति में सामाजिक न्याय और फिर समाजवादी प्रभाव का दशक रहा। ये दौर 'सौ में नब्बे शोषित हैं और नब्बे भाग हमारा है', 'धन–धरती और राजपाट में भागीदारी चाहिए' का नारा देनेवाले जगदेव प्रसाद का रहा, जिन्होंने जाति के वर्चस्व को तोड़ा और शोषित वर्ग को अपने अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित किया। जिनके कारण बिहार में पहली बार पिछड़ों के मुख्यमंत्री और उप मुख्यमंत्री बनने की शुरुआत हुई। जहां तक बिहार में साम्यवादी राजनीति की बात है तो साम्यवादी आंदोलन की जड़ें यहां गहरी रही हैं और कम्युनिस्ट पार्टियां यहां हमेशा सशक्त रही हैं।

बिहार के कृषि प्रधान राज्य होने और भूमिहीन किसान मजदूरों की बड़ी संख्या होने के कारण कम्युनिस्ट पार्टियों का मजबूत कैडर आधार रहा। बहुत बड़ी संख्या में हर जाति हर धर्म के लोग कम्युनिस्ट पार्टियों के सदस्य थे और उनकी तादाद काफी थी। लेकिन बाद में कम्युनिस्ट पार्टियों में अपनी टूट के कारण और साम्यवाद के नाम पर कम्युनिस्ट पार्टी में सवर्ण जातियों के वर्चस्व ने धीरे–धीरे इसके प्रभाव को कम किया। लालू प्रसाद के उभार ने ओबीसी और मुसलमानों को उनकी ओर मोड़ दिया। लालू प्रसाद के समय में ही रणवीर सेना के जवाब में उग्र साम्यवाद के प्रभाव का अच्छा–खासा समय रहा और इसकी पृष्ठभूमि में बिहार का जातिवादी और सामंती समाज रहा है। नब्बे का दौर रणवीर सेना और एमसीसी के खूनी संघर्ष का रहा है।

बिहार में 1990 में लालू प्रसाद यादव के पहली बार मुख्यमंत्री बनने के बाद से वर्तमान तक सत्ता पिछड़ों के हाथ में ही रही है और राजनीति के केंद्र में सामाजिक न्याय हमेशा से रहा है। बेशक बिहार में ओबीसी वर्ग सत्ता में लगातार भागीदारी से राजनीतिक और सामाजिक रूप से सशक्त हुआ है। पिछड़ी जातियों के सशक्तीकरण का एक चक्र पूरा हो चुका है, लेकिन इस क्रम में जो हासिल नहीं हुआ है वह है दलित– महादलित, अति पिछड़े और पसमांदा जाति समूह के लोगों की सत्ता में ओबीसी वर्ग की तरह भागीदारी और हिस्सेदारी। इसकी जिम्मेदारी सामाजिक न्याय की राजनीति करने वाले दलों की ही है। शुरुआत 'सौ में नब्बे शोषित हैं और नब्बे भाग हमारा है' और लोहिया के नारे 'पिछड़े पावें सौ में साठ' की बात से हुई थी। सामाजिक न्याय और बदलाव की प्रक्रिया अभी साठ से आगे बढ़ाकर नब्बे तक लाने की जरूरत है।

बिहार विकास के हर मानक पर आज देश के सभी राज्यों में सबसे निचले पायदान पर है। मानव विकास सूचकांक में बिहार

21 बड़े राज्यों की सूची में सबसे नीचे पायदान पर है। राज्य के 50 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे कुपोषण की चपेट में हैं। शहरीकरण की दर यहां सबसे धीमी है। राज्य की साक्षरता दर सबसे कम है, महिला साक्षरता में राज्य का स्थान नीचे से दूसरा है और जनसख्या वृद्धि दर देश में सबसे ज्यादा है। सकल घरेलू आय के आधार पर प्रति व्यक्ति आय के मामले में 21 बड़े राज्यों की सूची में बिहार सबसे नीचे है और ग्रामीण प्रति व्यक्ति आय के मामले में 18 वां और शहरी प्रति व्यक्ति आय के मामले में 22 राज्यों की सूची में बिहार का स्थान 22वां ही है, बिहार की रोजगार दर पूरे देश में निम्नतम 13.6 है, नॉलेज बेस्ड वर्कर स्पेस के मामले में भी बिहार का स्कोर 1.77 है जबकि चंडीगढ़ और दिल्ली जैसे राज्यों का स्कोर क्रमशः 22.44 और 14.61 है। भारत का जनसख्या घनत्व जहां 464 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है, वही बिहार का जनसख्या घनत्व 1224 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है, जो भारत के औसत से से 3 गुना ज्यादा है।

आकड़ें राष्ट्रीय औसत से भी बहुत अधिक हैं। और इन सबमें भी सबसे कड़वी हकीकत यह है कि बिहार देश के सबसे ज्यादा गरीबी दर वाले तीन राज्यों में से एक है।

ये तमाम आकड़ें हर बिहारी के लिए निराश कर देने वाले हैं। यह एक कड़वी हकीकत है, सामाजिक न्याय और समाजवाद की पृष्ठभूमि के नेताओं के तीन दशक से ज्यादा समय के राज के बाद भी विकास आकड़ों में नहीं नजर नहीं आ रहा। नीतीश कुमार के 15 साल से ज्यादा के शासन काल में और आखिर के सात साल भाजपा गठबंधन वाली डबल इंजन की सरकार होने से भी बिहार की सूरतेहाल नहीं बदली है। केवल 2017–18 से 2022 की ही बात करें तो इस अवधि में ही नीतीश कुमार अपने ही पहले के हासिल आकड़ों से पीछे चले गए हैं। मानव विकास सूचकांक के कई पैरामीटर पर खुद उनका प्रदर्शन उनके अभी के प्रदर्शन से बहुत अच्छा रहा था। कुपोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्कूल ड्रॉप आउट, महिलाओं के खिलाफ अपराध और दलितों के खिलाफ अत्याचार के मामले में हालात पहले से भी बदतर हुए हैं और कई पैरामीटर पर स्थितियां पिछले एक दशक से जस–की–तस बनी हुई हैं। उच्च शिक्षा रोजगार और निवेश

बिहार में 1990 में लालू प्रसाद यादव के पहली बार मुख्यमंत्री बनने के बाद से वर्तमान तक सत्ता पिछड़ों के हाथ में ही रही है और राजनीति के केंद्र में सामाजिक न्याय हमेशा से रहा है और इसका फायदा भी हुआ है बेशक बिहार में ओबीसी वर्ग सत्ता में लगातार भागीदारी से राजनीतिक और सामाजिक रूप से सशक्त हुआ है।

जैसे मसलों पर आकड़ों की बात से अलग यहां किसी को भी कुछ होता या कुछ बदलाव होता नहीं दिखता है। सत्र विलंब से चलना, राज्य में नौकरियों की गुंजाइश नहीं होना, कोई नया उद्योग धंधा नहीं लगना और बड़ी संख्या में राज्य के युवाओं का पहले पढ़ने और फिर नौकरी के लिए पलायन कर जाना– बिहार का सच यही है। जबकि दूसरी ओर ऋण एवं निवेश सर्वेक्षण रिपोर्ट जिसे भारत सरकार के केंद्रीय सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय के द्वारा वर्ष 2019 के जनवरी से दिसंबर तक के सर्वेक्षण के आधार पर तैयार किया गया है के मुताबिक बिहार की 10 प्रतिशत शहरी आबादी के पास शहरों की 51 फीसदी संपत्ति है। शहरों में रहने वाले 10 प्रतिशत लोग बिल्कुल फटेहाल हैं। उनके पास भौतिक या वित्तीय संपत्ति कुछ भी नहीं हैं। गांवों में भी 43 प्रतिशत संपत्ति 10 प्रतिशत लोगों के पास है। और एकदम ताजा आकड़ों की बात करें तो पिछले महीने बिहार में बेरोजगारी दर 18.82 प्रतिशत रही अगस्त 2021 से जुलाई 2022 तक 13.6 फासदी से 18.82 प्रतिशत इससे स्वतः तस्वीर स्पष्ट हो जाती है। एक और तस्वीर निवेश की भी है जब महाराष्ट्र और गुजरात जैसे राज्य देश में प्रस्तावित निवेश के आधे से कम को आकर्षित करते हैं तब बिहार में सबसे कम 1.4 प्रतिशत 50 फीसदी घरों से पलायन हुआ है और यहां के लोगों के अंतर्राज्यीय पलायन के मामले में राष्ट्रीय स्तर पर कुल 15 प्रतिशत शेयर के साथ बिहार दूसरे स्थान पर है।

जाहिर है बिहार को देश के शीर्ष के राज्यों के स्तर पर लाने में सरकारें अभी कामयाब नहीं हुई हैं। सामाजिक न्याय, हाशिये के समुदाय का राजनीतिक सशक्तीकरण और महिलाओं की बढ़ती भागीदारी जैसे लक्ष्यों के बावजूद समग्र विकास की दौड़ में बिहार काफी पीछे है और इसका रास्ता सबसे पहले मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति और विजन से ही निकलता दीखता है।

(मनोरमा बिहार से हैं। अभी बेंगलुरू में रहती हैं। संप्रति स्त्रीकाल डिजिटल की सम्पादक हैं।)

■

दुर्गेश कुमार

बद्री अहीर : एक सुदूर चमकता सितारा

मिट्टी के लाल वे होते हैं जो झंझावातों के बावजूद संघर्ष के तपोबल से मुकाम बनाते हैं। फलक पर पहुंच कर भी जड़ों से जुड़े रहते हैं। ऐसे नायकों पर कितनी भी मिट्टी की परत डाल कर छिपाने की कोशिश की जाए आने वाली पीढ़ियां इतिहास के पन्ने पलट कर उन्हें ढूंढ ही निकालती है। बिहार के आरा जिले में एक ऐसे ही नायक की कहानी दबी है, जिसे पलट कर जनमानस के बीच रखा जाए तो उसकी जन्मभूमि वतन के रखवालों के लिए तीर्थ होगी। इस महानायक ने दक्षिण अफ्रीका में गिरमिटिया मजदूरों के लिए सत्याग्रह में संघर्ष तो किया ही भारत की आजादी में भी कुछ त्याग के पन्ने लिख डाले।

तत्त्कालीन शाहाबाद जिले की भोजपुरिया माटी की आबोहवा में जगदीशपुर थाना के हेतमपुर गांव में शिवनारायण अहीर के दूसरे पुत्र बद्री अहीर का जन्म संभवतः 1860 (सटीक जन्मतिथि का रिकॉड अनुपलब्ध) में हुआ था। बद्री के बड़े भाई का नाम रामाधीन अहीर था। बद्री लंबे कद–काठी के, रोबीले मूंछों वाले जवान थे। तब बिहार में जमींदारी प्रथा थी। उस जमाने में जमींदार को मालिक कह कर ही पुकारे जाने की परंपरा थी।

हेतमपुर गांव के जमींदार अमीर सिंह की अदावत गोतिया माधो सिंह से चलती थी। किसी बात पर बैल को लेकर हुए विवाद में बद्री अहीर ने माधो सिंह की पिटाई कर दी, जिसे लेकर जमींदार अमीर सिंह बहुत खुश हुए और बद्री अहीर से लगाव बढ़ गया। तब से बद्री अहीर हेतमपुर गांव के गढ़ पर अमीर सिंह के यहां चौकीदार बनकर उनके सान्निध्य में रहने लगे।

कुछ दिन हुए ही थे कि वर्ष 1882 में नजदीक के कस्बे जगदीशपुर बाजार में जमींदार अमीर सिंह के साथ बद्री अहीर भी खरीददारी के लिए कपड़े की दुकान पर गये हुए थे। पगड़ी की खरीददारी हो रही थी, अमीर सिंह की तरह कपड़े की दुकान पर ही बद्री भी केसरिया पगड़ी बांधने लगे। बद्री का पगड़ी बांधना अमीर सिंह को अच्छा नहीं लगा और डांट–फटकार लगा कर पगड़ी उतारने के लिए कहा, अपमान भरे शब्द भी कहे। इसी को लेकर कहा–सुनी हुई। मजबूत कद–काठी के बद्री कहां मानने वाले थे! जमींदार अमीर सिंह की पिटाई कर दी और जगदीशपुर से गांव हेतमपुर की तरफ लौटकर घर वालों को पूरी घटना बताई।

उस दौर में जमींदारों से मुकाबला करना संभव नहीं था। बद्री नजदीक के अपने फुआ के गांव में रहने लगे। दो–तीन माह तक रहने के बाद यह सोचकर गांव लौटे कि शायद गुस्सा कम हो

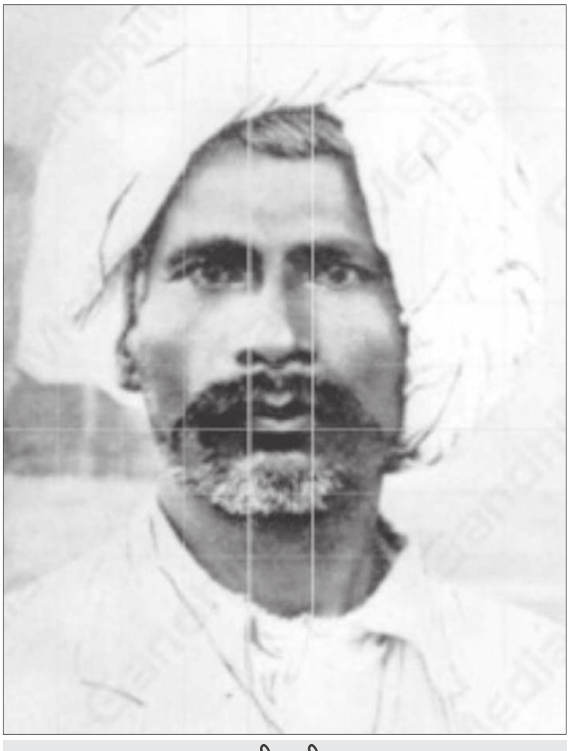

बद्री अहीर
(1860–1918)

गया होगा। लेकिन ऐसा नहीं था। अमीर सिंह के लोग उन्हें तलाश रहे थे। गांव लौटने पर स्थिति जानने के बाद 2–3 दिनों तक रहे ही कि अमीर सिंह के लोगों को पता चल गया कि बद्री गांव में ही है। ऐसे में बद्री सूर्य की किरण फूटने से पूर्व ही छः किलोमीटर दक्षिण दिशा की तरफ स्थित बिहिया रेलवे स्टेशन की तरफ चल निकले। तब के दौर में बिहिया में कंपनी के अधिकारी रेलवे स्टेशन पर ही कैम्प कर कंपनी के कामों का संचालन करते थे। बद्री अहीर वहां पहुंच कर इधर–उधर घूम रहे थे तो कंपनी के यूरोपियन मेजर की उन पर नजर पड़ी। मेजर बद्री से पूछताछ करने लगा।

यूरोपियन मेजर : तुम यहां क्या कर रहे हो?

बद्री अहीर : सरकार, रोजी–रोटी की तलाश में निकला हूं।

यूरोपियन मेजर : तुम क्या–क्या कर सकते हो?

बद्री अहीर : सरकार जो कहियेगा, उसे करेंगे, छत और रोटी चाहिए। ईमानदारी से काम करेंगे।

यूरोपियन मेजर : हमारे साथ डरबन चलोगे? वहां काम करना, पैसे कमाना।

बद्री अहीर : जी सरकार।

इसके बाद बिहिया रेलवे स्टेशन से बद्री 4 जुलाई 1882 को कलकता के लिए रवाना होते हैं। कोलकाता बंदरगाह से 7 जुलाई 1882 को रवाना हुए पनिया के जहाज MARCHENT MAN IV में 383 मजदूरों के समूह GROUP DS) में INDENTURE NO. 275772 वाले बादर अहीर उर्फ बद्री अहीर 22 दिनों की यात्रा के बाद नटाल पहुंचते हैं। बद्री का वर्क कांट्रेक्ट UMHALANGA VALLEY NATAL SUGAR COMPANY के साथ 5 साल का था।

दक्षिण अफ्रीका में शुगर मिल में काम करने के दौरान ही बद्री ग्रॉसरी प्रोडक्ट बेचने का पार्ट टाइम काम भी करने लगे। फिर धीरे–धीरे इसी बिजनेस को बड़ा करते गये। बद्री अहीर ने काम करने के दौरान धर्नाजन करने के साथ–साथ जमीन–जायदाद भी खरीदना शुरू कर दिया। बद्री अहीर तब तक डरबन में बद्री पैलेस जैसे आलीशान मकान के मालिक हो चुके थे।

उन्होंने जयराम सिंह के साथ मिलकर साल 1904 में जोहांसबर्ग के गिरमिटिया मजदूरों की गंदी बस्तियों की समस्याओं का समाधान कराने के लिए संगठन बनाया। उसी संगठन द्वारा नगरपालिका के रवैये के विरुद्ध मुकदमा दायर करने के लिए बैरिस्टर महात्मा गांधी के सम्पर्क में आये। महात्मा गांधी तब दक्षिण अफ्रीका में ही वकालत कर रहे थे। तब गिरिमिटिया मजदूरों के संगठन के अध्यक्ष जयराम सिंह थे, जो तत्कालीन शाहाबाद जिले के कुदरा के पास बहुआरा गांव के निवासी थे। दक्षिण अफ्रीका के प्रसिद्ध सत्याग्रही और भारत के भी स्वतंत्रता आंदोलन में भाग ले चुके भवानी दयाल संन्यासी जयराम सिंह के ही पुत्र थे। जयराम सिंह और बद्री अहीर दोनों साथ ही बैरिस्टर महात्मा गांधी से मिलने आते–जाते। मुकदमों के सिलसिले में ही महात्मा गांधी का बद्री अहीर से लगाव बढ़ता गया। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में जयराम सिंह का भी जिक्र अच्छे इंसान के रूप में किया है। गांधी लिखते हैं कि बद्री से मेरा घनिष्ठ लगाव हो गया। बद्री अहीर भी महात्मा गांधी को भाई कहते थे, जो दक्षिण अफ्रीका में उन्हें बिहारी मजदूरों द्वारा पुकारे जाने वाला नाम के रूप में प्रचलित भी हो गया था।

महात्मा गांधी अपनी आत्मकथा के शीर्षक 83 में लिखते हैं: जोहान्सबर्ग में जब उनके लिए शाकाहारी खाने के लिए जर्मन द्वारा चलाया जाने वाला होटल बंद हो गया तो थियोसॉफिस्ट महिला द्वारा बड़े कमरे में एक रेस्टोरेंट चलाने के लिए आर्थिक मदद मांगी गई।

महात्मा गांधी लिखते हैं कि उनका एक मुव्वकिल जो मूलतः गिरिमिटिया मजदूर के रूप में आये थे, बड़ी रकम जमा कर रखते थे। जिनका नाम बद्री था, जो बड़े ही सहृदयता वाले थे। जिन्होंने सत्याग्रह में भी प्रमुख भूमिका निभायी और जेल भी गए।

बद्री से उस पैसे को रेस्टोरेंट वाली महिला को देने के लिए गांधी जी ने पूछा तो जवाब मिला–इच्छा करें तो फेंक दीजिए इन पैसों को, लेकिन हम कुछ नहीं जानते हैं, मैं सिर्फ आपको जानता हूं। हालांकि तीन माह में ही वह रकम डूब गया, लेकिन बद्री अहीर ने पैसों वापस नहीं लिया।

दक्षिण अफ्रीका में वकालत के दौरान गांधी जी के सम्पर्क में बहुत सारे भारतीय आये। उन सबके बारे में अपनी आत्मकथा में महात्मा गांधी शीर्षक 91 में जिक्र करते हुए लिखते हैं– श्री बद्री सत्याग्रह के दौरान मेरे काफी घनिष्ठ हो गए। मैं उनके लिए एक वकील से अधिक भाई की तरह हो गया था।

बद्री द्वारा दी गई रकम कितनी थी इसका तो आत्मकथा में जिक्र नहीं मिलता है। किन्तु बद्री अहीर के परिवार के सदस्य बताते हैं कि 1000 पौंड की रकम उन्होंने गांधी जी को दी थी।

इससे अलग बद्री अहीर ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की समस्याओं के लिए आगे रहकर बहुत संघर्ष किया। तब दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रति माह 1 पौंड वन टाइम टैक्स लगाया गया था। जिसका विरोध करने के कारण बद्री अहीर को 6 जून 1893 को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। ब्रदी अहीर जेल में महीनों तक रहे। साल 1913 गांधी जी के साथ दक्षिण अफ्रीका में गिरफ्तारी देने वाले बद्री अहीर पहले भारतीय थे।

दक्षिण अफ्रीका में बद्री अहीर की संपत्ति

दक्षिण अफ्रीका में बद्री ने बड़ी संपत्ति अर्जित की। किराने का बिजनेस चल निकला था। वे लगभग 20 एकड़ में फैले बद्री पैलेस के मालिक तो बने ही साथ में अनेक भूखंड भी खरीदे। बद्री अहीर ने दक्षिण अफ्रीका से अलग–अलग समय में कुल 45000/ रुपये हेतमपुर में अपने रिश्ते के भाई को भेजा जिससे काफी जमीन जायदाद बय, रेहन खरीदा गया, जिस संपत्ति को हड़पने की गोतिया द्वारा कोशिश भी की गई। जिसे लेकर बाद में बद्री अहीर के परिवार वालों को मुकदमेबाजी भी झेलनी पड़ी। हालांकि मुकदमें में बद्री अहीर के पुत्रों को ही जीत मिली। आरा सिविल कोर्ट में दायर संपति के मुकदमें दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी के सहयोगी रहे वकील भवानी दयाल संन्यासी ने 25.12. 1944 को मुकदमों की पैरवी की। 1948 में मुकदमों में केस में जीत बद्री अहीर के परिजनों की हुई।

इसके अलावे दस्तावेजों के अनुसार बद्री ने अनेक जमीन दक्षिण अफ्रीका में खरीदी जिसका विवरण निम्न है:

1. विक्टोरिया कालोनी, नटाल में 1904, 1905 के दौरान 10

एकड़ जमीन खरीद।
2. 1904 में काउंटी ऑफ डरबन में डीड संख्या–772–1904 29 मार्च 1904 को 01 प्लॉट।
3. 1904 में डीड नं. 480–1904 19 फरवरी 1904 को 11 प्लॉट।
4. 1905 में 10 एकड़ जमीन 264–1905 में 20 जून 1905 को।
5. 1905 में डीड संख्या– 792–1905 12 अप्रैल 1905 को 01 भूखंड, विक्टोरिया कॉलोनी, नटाल।
6. 1905 में डीड संख्या 646–1906 7 अप्रैल 1906 2 प्लॉट।
7. 16 अगस्त 1912 को डीड नं. 157–1912, 01 प्लॉट।
8. 1915 में डीड संख्या 778–1915 20 जनवरी 1915 को 14 प्लॉट, काउंटी ऑफ कीप नदी।

भारत में महात्मा गांधी के साथ बद्री अहीर

दक्षिण अफ्रीका में रहने के दौरान बद्री अहीर ने 3–4 बार भारत की यात्रा की। एक बार वो आये तो अपनी पत्नी के साथ दक्षिण अफ्रीका गए। फिर वहां रहने के दौरान गोतिया को पैसा बराबर भेजते रहे। दूसरी बार भारत आए तो अपने भतीजा शिवपूजन बद्री को पुत्र बनाकर दक्षिण अफ्रीका ले गए जिन्हें अपनी संपत्ति का वारिस भी बनाया। तीसरी बार वे भारत तब लौटे जब महात्मा गांधी चंपारण जा रहे थे। महात्मा गाँधी के यात्रा की दौरान तन–मन–धन से बद्री अहीर भागीदार बने।

20 अगस्त 1917 को कानपुर से छपने वाले प्रताप ने लिखा– गांधीजी के साथ श्रीयुत बद्री भी थे जो दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में उनके साथ शामिल थे।

बद्री ने चंपारण की भी यात्रा की। 26 जुलाई 1917 को वे बेतिया पहुंचे। चंपारण यात्रा के दौरान धन–दौलत के साथ पूरे मन से महात्मा गांधी की यात्रा की व्यवस्थापक की भूमिका को देखकर चंपारण के तत्त्कालीन एस.पी ने शाहाबाद के एस.पी को पत्र लिखकर बद्री अहीर की पारिवारिक पृष्ठभूमि जानने को कहा।

भारत वापसी और परदेस कभी न लौटना

दक्षिण अफ्रीका से तीसरी बार लौटने के बाद अपने खतियानी 15 बीघा बय जमीन को मुक्त कराने के अलावे कुछ जमीनें नीलामी और कुछ रेहन जमीनें भी बद्री अहीर ने खरीदी। कुछ ही दिनों बाद बद्री अहीर की मृत्यु 1918 में हेतमपुर गांव में हुई।

बद्री अहीर के परपोते आमोद बद्री बताते हैं कि बद्री अहीर की मृत्यु के बाद हेतमपुर गांव में रह गए बद्री अहीर के तीसरे पुत्र रामनरेश अहीर का जीवन गरीबी में बीता। उसी दौरान बगल के बिलौटी गांव में महात्मा गांधी आये हुए थे। महात्मा गांधी से मिलने के दौरान दोनों गले लगकर रोये। रामनरेश अहीर ने अपनी आर्थिक स्थिति बताई तो महात्मा गांधी पत्र लिखकर ब्रिटिश सरकार द्वारा अधिगृहीत की गई बद्री पैलेस की राशि का पांचवां हिस्सा भुगतान करवाने में मदद की। चूंकि रामनरेश अहीर के अलावा बद्री अहीर ने दो पुत्र शिवप्रसाद बद्री, शुभदयाल बद्री, एक भतीजा शिवपूजन बद्री और दो पुत्रियों सोमारी बद्री और पापुल बद्री को भी वारिस बना गए थे।

बद्री अहीर के तीन संतान हुए। शिव प्रसाद बद्री, शिवदयाल बद्री और रानरेश बद्री। तीसरे पुत्र रामनरेश बद्री का परिवार हमेशा के लिए हेतमपुर आकर बस गया। जबकि बड़े पुत्र शिव प्रसाद बद्री, शिवदयाल बद्री वहां बैरिस्टर बने, उनका परिवार आज भी जोहान्सबर्ग, प्रिटोरिया, डरबन, केपटाउन, लंदन जैसे शहरों में प्रतिष्ठित पदों पर हैं।

सरल हृदय के बद्री अहीर

चंपारण सत्याग्रह के दौरान बद्री दक्षिण अफ्रीका से लौट कर गांव में ही रहने लगे, जबकि साउथ अफ्रीका में उनके कारोबार को भतीजा और दो बेटा देखने लगे थे। उस जमाने में पीलिया, हैजा जैसी बीमारियों से लोग मर रहे थे। बद्री गांव में भी बच्चों को पकड़–पकड़ कर नीम का काढ़ा पिलाते थे। तब गांव के अनेक पड़ोसियों की बंधक (गिरवी) रखी जमीन छुड़वाने के लिए आर्थिक मदद यह कह कर करते थे कि संभव होगा तो पैसे दे देना, नहीं दे सको तो भी कोई बात नहीं है। एक ऐसे ही पड़ोसी दोबरी महतो की भी बंधक (गिरवी) रखी जमीन मुक्त कराने के लिए उन्होंने आर्थिक मदद की थी। जो आगे चलकर दोस्ती की मिसाल यूं बना कि जब बद्री अहीर के पट्टीदारों से जमीन को लेकर विवाद हुआ तो बद्री अहीर जानबूझकर गृहत्याग कर दोबरी महतो के दालान में रहने लगे।

बद्री अहीर की पीढ़ी

बद्री अहीर के बेटे शिवप्रसाद बद्री भी 1930 में स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में एक माह के लिए गिरफ्तार होकर आरा जेल में रहे। लेकिन स्वतंत्रता सेनानी पेंशन लेने की बात हुई तो यह कहकर इनकार कर दिया कि देश के लिए जेल गए है पेंशन के लिए नहीं।

बद्री अहीर 1918 को मातृभूमि हेतमपुर गाँव में ही स्वर्ग सिधारे। लेकिन इतिहास में गुमनाम इस नायक की स्मृतियों की सुध न तो सरकार ले रही है और न ही समाज।

जब गांधी ने बद्री के लिए बंडी बनाई

महात्मा गांधी बद्री के साथ किस आत्मीयता से जुड़े हुए थे यह इसी बात से पता चलता है कि महात्मा गांधी ने खुद अपने हाथों से एक जैकेट 'बंडी' तैयार किया था और उसे बहुत सहेज कर रखा था। गांधी ने अपने पुत्र छगनलाल को 25 सितम्बर 1913 को एक पत्र भेजा। पत्र के अंत में इस जैकेट का जिक्र किया। 'एक बंडी मैंने तैयार की है' जिसे तुम पोलक को दे देना। वह बंडी बद्री के लिए है।'

(स्रोत कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉलयूम–12. पृष्ठ 210–211)

हमने अपने इस आइकन को आज लगभग बिसुरा दिया है। समय का तकाजा है कि बद्री अहीर के योगदान को सामने लाया जाए और बदले हुए परिप्रेक्ष्य में उनका मूल्यांकन हो ताकि आनेवाली पीढ़ियां इस बात को जानें कि हमारा भी कोई था, जो राष्ट्रपिता गांधी का इतना करीबी प्रियपात्र रहा।

(लेखक भोजपुर जिले के निवासी हैं। संप्रति स्वतंत्र पत्रकारिता।) ■

मो. उमर अशरफ

पीर अली खान : एक लेजेन्ड्री आइकन

पीर अली भारत की पहली स्वाधीनता की लड़ाई के उन चंद शहीदों में एक हैं, जिन्होंने भारत को गुलामी से मुक्त कराने के लिए दिलेरी के साथ फांसी के फंदे को स्वीकार किया। वे चाहते तो खुद और परिवार की खातिर झूठ बोलकर अपनी फांसी की सजा कम करवा सकते थे, लेकिन उन्होंने यह न करके अंग्रेज बहादुर से अपने कारनामे को बहादुरी के साथ कुबूल किया।

3 जुलाई को पीर अली खान के घर सैकड़ों की तादाद में लोग इकट्ठे हुए और उन्होंने पूरी योजना तय की। 200 से अधिक हथियारबंद लोगों की नुमाइंदगी करते हुए पीर अली खान ने गुलजार बाग में स्थित प्रशासनिक भवन पर हमला करने को ठानी, जहां से पूरी रियासत पर नजर रखी जाती थी। गुलाम अब्बास को इंकलाब का झंडा थमाया गया, नंदू खार को आस पास निगरानी की जिम्मेदारी दी गई, पीर अली ने कयादत करते हुए अंग्रेजों के खिलाफ जोरदार नारेबाजी की पर जैसे ही ये लोग प्राशासनिक भवन के पास पहुंचे, डॉ. लॉयल हिन्दुस्तानी (सिक्ख) सिपाहियों के साथ इनका रास्ता रोकने पहुंच गया। डॉ. लॉयल ने अपने सिपाहियों को गोली चलने का हुकुम सुनाया, दोतरफा गोली बारी हुई जिसमे डॉ. लॉयल मारा गया, ये खबर पूरे पटना में आग की तरह फैल गई।

पटना के क्रान्तिकारीयों के भीड़ पर चली अंधाधुंध गोली के नतीजे में कई क्रान्तिकारी मौके पर ही शहीद हो गए और दर्जनों घायल, इसके बाद जो हुआ उसका गवाह पूरा पटना बना, अंग्रेजो के द्वारा मुसलमानों के एक–एक घर पर छापे मारे गए, बिना किसी सबूत के लोगों को गिरफ्तार किया गया, शक की बुनियाद पर कई लोगों का कत्ल कर दिया गया। बेगुनाह लोगों को मरता देख पीर अली ने खुद को फिरंगियों के हवाले करने की सोची। इसी सब का फायदा उठाकर पटना के उस वक्त के कमिश्नर विलियम टेलर ने पीर अली खान और उनके 14 साथियों को 4 जुलाई 1857 को बगावत करने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया और पीर अली खान को पटना के कमिश्नर विलियम टेलर के दफ्तर ले जाया गया।

कमिश्नर विलियम ने पीर अली से कहा 'अगर तुम अपने नेताओं और साथियों के नाम बता दो तो तुम्हारी जान बच सकती हैं। पर इसका जवाब पीर अली ने बहादुरी से दिया और कहा 'जिन्दगी में कई ऐसे मौके आते हैं जब जान बचाना जरूरी होता है पर जिन्दगी में ऐसे मौके भी आते हैं जब जान दे देना जरूरी हो जाता है और ये वक्त जान देने का ही है।

"हाथों में हथकड़ियां, बांहों में खून की धारा, सामने फांसी का फंदा, पीर अली के चेहरे पर मुस्कान मानो वे सामने कहीं मौत को चुनौती दे रहे हों।

इस महान शहीद ने मरते–मरते कहा था, "तुम मुझे फांसी पर लटका सकते हो, पर तुम हमारे आदर्श की हत्या नहीं कर

सकते। मैं मर जाऊंगा, पर मेरे खून से लाखों बहादुर पैदा होंगे और तुम्हारे जुल्म को खत्म कर देंगे।"

इस चुनौती के बाद पीर अली ने हथकड़ी लगे अपने हाथों को मिलाकर बड़ी ही जज्बातियत के साथ कहा, 'मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूं?

कमिश्नर :– 'ठीक है, क्या पूछना चाहते हो? बताओ

पीर अली : 'मेरा घर?

कमिश्नर : 'उसे ढहा दिया जाएगा'।

पीर अली : 'मेरी जागीर?'

कमिश्नर : 'उसे सरकार जब्त कर लेगी'।

पीर अली : 'मेरे बच्चे?' और पहली बार वह कमजोर दिखा। वह हकलाया।

फिर कमिश्नर ने पूछा के तुम्हारे बच्चे कहां हैं?

पीर अली : अवध में हैं।

कमिश्नर : अभी मुल्क के जो हालात हैं उसमें कुछ भी कहना या वादा करना मुमकिन नहीं है। तब पीर अली उठा, उसने सलाम किया और खामोशी के साथ कमरे से बाहर निकल गया। इसके बाद 7 जुलाई 1857 को पीर अली को बीच चौराहे पर फांसी दे दी गयी।

सन 1929 में इटली जब लीबिया पर अपना कब्जा करने की लगातार कोशिश कर रहा था तब लीबिया के बागियों का सरदार उमर मुख्तार इटली की सेना को नाकों तले चने चबवा रहा था। मुसोलिनी को एक ही साल में चार जनरल बदलने पड़े। अंत में हार मान कर मुसोलिनी को अपने सबसे क्रूर सिपाही जनरल

ग्राजानी को लीबिया भेजना पड़ा। उमर मुख्तार और उसके सिपाहियों ने जनरल ग्राजानी को भी बेहद परेशान कर दिया। जनरल ग्राजानी की तोपों और आधुनिक हथियारों से लैस सेना को घोड़े पर सवार उमर मुख्तार व उनके साथी खदेड़ देते। वे दिन में लीबिया के शहरों पर कब्जा करते और रात होते–होते उमर मुख्तार उन शहरों को आजाद करवा देता। उमर मुख्तार इटली की सेना पर लगातार बीस पड़ रहा था और नये जनरल की गले ही हड्डी बन चुका था। अंततः जनरल ग्राजानी ने एक चाल चली और उसने अपनी चाल से उमर मुख्तार को गिरफ्तार कर लिया, 15 सितम्बर 1931 को हाथों में, पैरों में, गले में हथकड़ी जकड़ उमर मुख्तार को जनरल ग्राजानी के सामने पेश किया गया, 73 साल के इस बूढ़े शेर से जनरल ग्राजानी ने कहा 'तुम अपने लोगों को हथियार डालने कहो' ठीक पीर अली खान की तरह इसका जवाब उमर मुख्तार ने बड़ी बहादुरी से दिया और कहा, हम हथियार नहीं डालेगे, हम जीतेंगे या मरेंगे और ये जंग जारी रहेगी.. तुम्हें हमारी अगली पीढ़ी से लड़ना होगा और उसके बाद अगली से...और जहां तक मेरा सवाल हैं, मैं अपने फांसी लगाने वाले से ज्यादा जीऊंगा ..और उमर मुख्तार की गिरफ्तारी से जंग नहीं रुकने वाली... जनरल ग्राजानी ने फिर पूछा 'तुम मुझसे अपने जान की भीख क्यूं नहीं मांगते ? शायद मैं यूं दे दूं... उमर मुख्तार ने कहा, मैंने तुमसे जिन्दगी की कोई भीख नही मांगी दुनिया वालों से ये न कह देना की तुमसे इस कमरे की तन्हाई में मैंने जिन्दगी की भीख मांगी, इसके बाद उमर मुख्तार उठे और खामोशी के साथ कमरे से बाहर निकल गए। इसके बाद 16 सितम्बर सन 1931 ईस्वी को इटली के साम्राज्यवाद के विरुद्ध लीबिया राष्ट्र के संघर्ष के नेता उमर मुख्तार को उनके ही लोगों के सामने फांसी दे दी गयी।

अब जरा गौर कीजिए आज 7 जुलाई है और 7 जुलाई 1854 को भोपाल में अजीम इंकलाबी मौलवी बरकतउल्लाह भोपाली का जन्म हुआ, बरकतउल्लाह भोपाली न्यूयॉर्क, टोक्यो, जियोरन्स, काबुल, मास्को में रह कर हिन्दुस्तान की आजादी के लिए बहुत ही सफल संघर्ष किया जिसे कोई भी हिन्दुस्तानी भुला नही सकता है। मौलवी बरकतउल्लाह भोपाली आजाद हिन्द सरकार के पहले प्रधानमंत्री थे, ये सरकार साल 1915 को गई थी. जर्मनी, तुर्की और अफगानिस्तान ने इस अंतरिम सरकार को मान्यता दी थी। मई 1919 में वे भारत के प्रधानमंत्री की हैसियत से ही लेनिन से मिले थे जहां लेनिन ने उन्हें आजादी की लड़ाई में हर मुमकिन मदद का वादा किया था।

27 सितम्बर 1927 की रात हर रोज हिन्दुस्तान की आजादी का ख्वाब देखने वाले मौलाना बरकतुल्लाह भोपाली की आखिरी रात थी, उस समय वह अपने पूरे होश हवास में थे, और उस वक्त अपने कुछ साथियों के सामने जो उस समय उनके बिस्तर के पास मौजूद थे, से कुछ बात कही जो कुछ इस तरह थी :

तमाम जिन्दगी मैं पूरी ईमानदारी के साथ अपने वतन की आजादी के लिए जद्दोजहद करता रहा, ये मेरी खुशकिस्मती थी के ये मेरी नाचीज जिन्दगी मेरे प्यारे वतन के काम आई। आज इस जिन्दगी से रूख्सत होते हुए जहां मुझे ये अफसोस है कि मेरी जिन्दगी में मेरी कोशिश कामयाब नहीं हो सकी वहीं मुझे इस बात का भी इत्मनान है कि मेरे बाद मेरे मुल्क को आजाद करने के लिए लाखों आदमी आज आगे बढ़ आये हैं, जो सच्चे हैं, बहादुर हैं मैं इत्मनान के साथ अपने प्यारे वतन की किस्मत उनके हाथों में सौंप कर जा रहा हूं।

मौलाना बरकतुल्लाह भोपाली का इंतकल हो चुका था और उनके चाहने वाले का बुरा हाल था, मौलाना के इंतकल की खबर बिजली की तरह पूरे अमेरिका में फैल गई और वहा मौजूद हिन्दुस्तानियों के दिलां पर रंज ओ गम के बादल छा गए..

जैसे ही मौलाना बरकतुल्लाह भोपाली के इंतकाल की खबर हिन्दुस्तान एसोसिएशन ऑफ सेंट्रल यौरप के दफ्तर बर्लिन में पहुंची फौरन एक ताजियाती जलसा किया गया। चूंकि एसोसिएशन में काम करने वाले अधिकतर लोग मौलाना के साथी थे, इस जलसे को खताब करने वालो में दुनिया के छः मुल्क के नुमाईंदे थे.. हिन्दुस्तानियों के अलावा मौलाना को खिराज–ए–अकीदत पेश करने वालों में जर्मन, रूस, ईरान, अफगानिस्तान और तुर्की के नुमाईंदों मौजूद थे।

ईरानी नुमाईंदे ने मौलाना बरकतुल्लाह की याद में अपना नजराना–ए–अकीदत पेश करते हुए कहा : ये सच है कि अजीम इन्कलाबी बरकतुल्लाह का इन्तकल हो गया, लेकिन उनका ये जज्बा ए आजादी लाशानी है, वह हमेशा लाशानी रहेगा.. सभी इन्कलाबी की बैनुलकवामी शकल होती है, कोई इन्कलाब एक मुल्क या एक खत्ता में महदूद नहीं रहता है, बल्कि वह तमाम मुल्क को मुतास्सिर करता है, इसलिए किसी भी मुल्क के इन्कलाबी शहीद को सारी दुनिया के आजादी पसंद लोग अपना शहीद मानते हैं और इसीलिए उससे मुहब्बत करते हैं, उसकी इज्जत करते हैं। ये शहीद आजादी के उस रास्ते की तख्लीक करते हैं जिस पर जल्द या देर दुनिया की सारी कौमों को चलना है, अगर ये शहीद न होते तो दुनिया एक अंधेरी जगह बन जाती।

अब गौर करने वाली बात यह है के ईरानी नुमाईंदे ने कहाः 'कोई इन्कलाब एक मुल्क या एक खित्ता में महदूद नही रहता है, बल्कि वह तमाम मुल्क को मुतास्सिर करता है, इसलिए किसी भी मुल्कि के इन्कलाबी शहीद को सारी दुनिया के आजाद–पसंद लोग अपना शहीद मानते हैं और इसीलिए उससे मुहब्बत करते हैं, उसकी इज्जत करते हैं और अकीदतमंदी के साथ उसे याद करते हैं।'

7 जुलाई, 1857 ई. को पीर अली को फांसी पर लटका कर शहीद कर दिया जाता है और इस हादसे के एक साल बाद यानी 20 अगस्त 1858 को उमर मुख्तार लीबिया में पैदा होते हैं। 80 साल के वफ्फे के बाद भी वही जज्बा !! आखिर आता कहां से है?

(लेखक ने बी.टेक की डिग्री ली है। मुस्लिम समाज, राजनीति और नायकों पर इनका काम उल्लेखनीय है। संप्रति 'हैरीटेज टाइम्स इन' के सम्पादक हैं।)

■

अंगद किशोर

केशरी राम : मगध के गुमनाम शहीद

आजादी का दीवाना, साहस एवं पराक्रम की प्रतिमूर्ति तथा 1942 की अमर और अभूतपूर्व क्रांति का लड़ाका गुमनाम शहीद केशरी राम की देशभक्ति और वीरता की दास्तान आज भी टंडवा थाने के गली–कूचों में गुंजायमान है। पहलवान सरीखा डील डौल और ललकार भरी बुलंद आवाज वाला बहुआयामी व्यक्तित्व का नाम था केशरी। जहां बुजुर्ग उनके स्वाधीनता संग्राम में अभूतपूर्व योगदान का यशोगान करते अघाते नहीं, वहीं युवा उनका स्मरण करते हुए गौरवान्वित महसूस करते हैं। हर स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस के अवसर पर टंडवा में स्वाधीनता संग्राम के शहीदों तथा स्वतंत्रता सेनानियों की याद में समारोह का आयोजन होता है, जिसमें बढ़–चढ़कर लोग भाग लेते हैं। केशरी राम की शहादत को याद कर फख्र से सबका सीना चौड़ा हो जाता है। 1942 की क्रांति में केशरी राम एवं उनके साथी अंग्रेजी हुकूमत एवं जमींदारों के जुल्म एवं अन्याय के खिलाफ हक एवं न्याय के लिए देश की आजादी के महासंग्राम में कूद पड़े। महात्मा गांधी के आह्वान पर उन्होंने देश के लिए सर्वस्व होम करने को ठान लिया। इस महाक्रांति का योद्धा तथा क्रांतिकारियों के लिए आदर्श बन चुके केशरी राम गोरी सरकार की नजरों में खटकने लगे। मुखबिरों की नजरें उनपर लगी रहतीं। ब्रिटिश हुकूमत की साजिश का ही परिणाम था कि 28 अगस्त 1942 को अंग्रेज अधिकारी ने उनके ही घर के सामने गोलियों से उन्हें भून डाला। उनकी स्मृति में शहादत स्थल पर निर्मित एक अधूरा स्मारक 1994ई बनाया गया। भारत में 1942 की क्रांति ने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ एक ऐसा जबरदस्त आंदोलन का सूत्रपात किया, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों को अगस्त 1947 में सत्ता सौंपकर जाना पडा। इस क्रांति में हजारों लोगों ने हंसते–हंसते अपनी जान की कुर्बानी दे दी। फख्र की बात यह है कि इस क्रांति को सफल बनाने में वंचित समाज के असंख्य लोगों की भागीदारी रही, मगर दुर्भाग्य की बात यह है कि इतिहास के पन्नों से उनका नाम गायब है और सामाजिक रूप से उन्नत मुट्ठी भर लोगों का ही नाम अंकित हो सका। वंचित समाज के अनेक लोगों की शहादत इतिहास के पन्नों से महरूम रही। विडंबना तो इस बात की है कि तत्कालीन सरकारी दस्तावेजों में क्रांतिकारी–सूची में नाम होने के बावजूद आजाद भारत में बतौर स्वतंत्रता सेनानी न तो उन्हें मान्यता मिली और न उस अनुरूप प्रतिष्ठा ही। भला हो जनमानस का, जिसने उनकी प्रेरक स्मृति को जुबानी ही सही, मगर सदा जीवित रखा। समाज के चाटुकार–वर्ग के लोग इतिहास के पन्नों पर अपना उपनिवेश स्थापित करने में सफल रहे, मगर वंचित समाज के क्रांतिकारी सपूत स्वतंत्रता आंदोलन का वास्तविक योद्धा होने के बावजूद इतिहास के पन्नों से खारिज किए जाने के अयिाशाल रहे।

बिहार के औरंगाबाद जिला अन्तर्गत नबीनगर थाना के टंडवा गांव (अब यह कस्बा है और थाना बन चुका है) के रहने

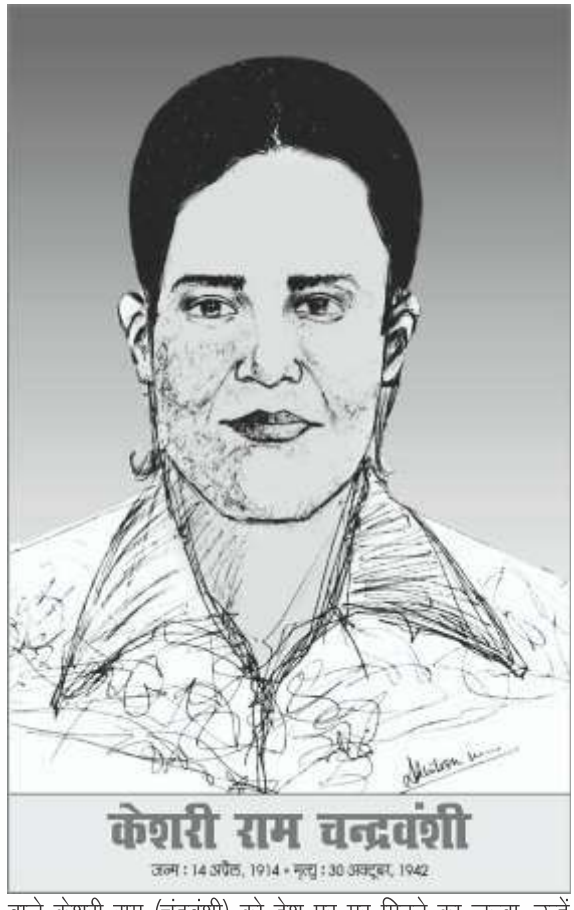

वाले केशरी राम (चंद्रवंशी) को देश पर मर मिटने का जज्बा, उन्हें अपने क्रांतिकारी पिता देनी राम से विरासत में मिली थी। हट्टा–कट्टा शरीर, ऊंचा कद, सर पर लंबे–लंबे बाल, गहरा सांवला रंग तथा चेहरे पर आत्मविश्वास से लबरेज देश के लिए कुछ कर गुजरने का जज्बा–यही मुकम्मल तस्वीर थी, उनकी। 14 अप्रैल 1914 को टंडवा में जन्म केशरी बचपन से ही बहादुर और दृढ़ संकल्प के थे। इसीलिए उनका नाम उनके पिता ने बड़े शौक से केशरी (यानी शेर) रखा था, जबकि उन्होंने देशभक्ति से ओतप्रोत हो, अपने बड़े बेटे का नाम 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के अमर नायक बाबू वीर कुंअर सिंह के नाम पर बाबू कुंअर रखा था। तात्पर्य यह कि पारिवारिक पृष्ठभूमि अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ होने के कारण केशरी राम पर बाल्यकाल से ही देशभक्ति का नशा सवार हो चुका था। देनी राम के छह पुत्रों में केशरी दूसरे नंबर पर थे। वे बचपन से ही पराक्रमी और साहसी थे। अपने से बड़ी उम्र वाले पहलवानों को भी धूल चटा देते थे। उनका डी एन ए जुल्म और अन्याय के खिलाफ था।

सरदार भगत सिंह की फांसी के खिलाफ प्रदर्शन

केशरी राम बचपन से ही देशभक्ति से ओत–प्रोत और अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ थे। शहीदे–ए–आजम भगतसिंह, खुदीराम बोस, चंद्रशेखर आजाद, सरदार उधम सिंह आदि क्रांतिकारियों की शहादत नयी पीढ़ी के बालकों में उमंग और उत्साह के साथ देशभक्ति का जज्बा पैदा कर रही थी। केशरी उसी परंपरा के वाहक थे। यह बात दीगर है कि बचपन में उन्हें देशभक्ति का जज्बा अपने पिता से मिला था। जब सरदार भगत सिंह 23 मार्च 1931 को अपने दो क्रांतिकारी साथियों सुखदेव और राजगुरु के साथ फांसी पर लटका दिये गये थे, तब सत्रह साल का बालक केशरी इस अमानवीय घटना के विरोध में आक्रोश से भर उठा। वह सरदार भगत सिंह को अपना आदर्श मानता था। सुनी–सुनाई जुबानी कहानी के अनुसार, फांसी की इस घटना के खिलाफ औरंगाबाद में आयोजित प्रदर्शन में भाग लेने के लिए बालक केशरी घर से भागकर वहां चला गया। वहीं पर उसकी मुलाकात पलामू के स्वतंत्रता सेनानी गुलाब किशोर आजाद से हुई। गुलाब किशोर आजाद की पहली बार गिरफ्तारी इसी घटना में हुई थी। केशरी जेल जाने से तो बच गए, मगर अंग्रेजों के डंडे से नहीं। खूब मार पड़ी। इसी घटना के बाद से उनके तेवर में उबाल आ गया। उनके पिता द्वारा कही गई यह बात कि अंग्रेज और उनके चाटुकार जमींदार इस देश में घुन की तरह हैं, जो धीरे–धीरे पूरे देश को अत्यंत जर्जर बना देंगे, अब समझ में आने लगी। अंग्रेजी हुकूमत को भारत से उखाड़ फेंकना, उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। यही कारण था कि अपने शरीर की तंदुरुस्ती पर वह काफी ध्यान देते थे। गाय–भैंस पालना, सुबह–शाम भरपूर दूध पीना और पहलवानी करना उनकी दिनचर्या थी।

1942 में टंडवा में तांडव

महात्मा गांधी की उपस्थिति में 8 अगस्त 1942 को 'बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की आयोजित बैठक में 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित होते ही अंग्रेज सरकार बौखला गई। उसने तत्काल महात्मा गांधी तथा कांग्रेस के अन्य बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर नजरबंद कर दिया। अंग्रेज सरकार की इस कार्रवाई के खिलाफ में गांधी जी ने पूरे देश को 'करो या मरो' के लिए आह्वान किया। यह आह्वान जादुई मंत्र की तरह जनमानस में फैलता चला गया। युवा, वृद्ध सभी आंदोलित हो उठे। देशभक्तों के मन में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ कुछ करने का जज्बा हिलोरे मारने लगा। नगर–नगर, गांव–गांव आंदोलित हो उठा। रेल की पटरियां, टेलिफोन के तार उखाड़ दी गई। सरकारी भवनों में आग लगा दिए जाने लगे। तात्पर्य यह कि देश भर में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ क्रांतिकारियों की जबरदस्त मुहिम तेज हो गई। इस अवसर पर भला टंडवा के केशरी कैसे चुप बैठते? शेर की तरह दहाड़ उठे। यथा नाम तथा गुण। अपने साथियों के साथ गांव–गांव निकल पड़े।उस समय यह गीत इस क्षेत्र में खूब प्रचलित था–

धरमी कोठरिया खोलाई दा, राम–लक्ष्मण।
गांधी से भेंट कराई दा, राम–लक्ष्मण।

क्रांतिकारी केशरी ने अपने साथियों को लेकर टंडवा, पुरहारा, चंद्रगढ़, बसडीहा, बेनी गंजहर, खैरी, फुलवरिया, शिवसागर आदि दर्जनों गांवों का दौरा किया। 21 अगस्त 1942 की सुबह टंडवा में देनी राम के घर के सामने विशाल पीपल के वृक्ष के नीचे देशभक्तों की चौपाल सजी। इस बैठक में विभिन्न गांवों से सौ से अधिक लोगों ने भाग लिया। पहले से गांव में प्रचलित परंपरा थी कि पीपल के पेड़ के नीचे लोग झूठ नहीं बोलते। यही कारण था कि वीर केशरी ने देशभक्ति से ओतप्रोत लोगों को पीपल के पेड़ के नीचे सत्य संकल्प लेने के लिए प्रेरित किया। चूंकि गांधी जी शराब को पाप की जड़ मानते थे, इसलिए सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि टंडवा की सरकारी शराब भट्ठी को बंद करा दिया जाए तथा नबीनगर में सरकारी भवनों पर तिरंगा फहराया जाए। महात्मा गांधी और भारत माता के जयकारा के साथ इस प्रस्ताव पर मुहर लग गई।

उसी दिन संध्या लगभग चार बजे देशभक्तों के एक बड़ी हुजूम ने जांबाज केशरी राम, उनके पिता देनी राम और अब्दुल गफूर के नेतृत्व में सैकड़ों लोगों ने महात्मा गांधी और भारत माता की जयकारा के साथ टंडवा स्थित सरकारी शराब भट्ठी पर धावा बोल दिया। आमलोगों में ब्रिटिश शासन और व्यवस्था के खिलाफ इतना आक्रोश था कि भीड़ अनियंत्रित हो गई। क्रांतिकारियों ने भट्ठी में आग लगा दी। भट्ठी के संचालक जो भी मिले, उनकी दम भर पिटाई की गई। किसी तरह वे जान बचाकर भागे। देशभक्तों की फौज नबीनगर की ओर कूच कर गयी। घटना की सूचना मिलते ही नबीनगर थाना से पुलिस का टामी दल फौरन टंडवा के लिए कूच किया। पुलिस को देखते ही क्रांतिकारियों ने ईंट–पत्थरों से सामना किया, मगर पुलिस का टामी दल भारी पड़ा। चंद मिनटों में देशभक्तों की भीड़ छंट गई। ग्राम चंद्रगढ़ बालकेश्वर राम (चंद्रवंशी) तथा पुरहारा के नथूनी हजाम पकड़ लिए गये। जैसी संभावना थी, वैसी ही हुई। पुलिस ने अपना पूरा गुस्सा उन दोनों क्रांतिकारियों पर उतार दिया। दोनों को लाठी–डंडे से इतना मारा कि कपड़े छोड़िए,शरीर के चमड़े चिथड़े–चिथड़े हो गये। वे दोनों लगभग नंगे हो चुके थे। कहा जाता है कि चंद्रगढ के जमींदार भगवती सिंह के कहने पर उन्हें छोड़ दिया गया। मगर अंग्रेज अधिकारियों के दबाव में पुनः चार दिन के अंदर ही बालकेश्वर राम को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। नथूनी हजाम घर छोड़कर भाग चुके थे, इसलिए उनकी तत्काल गिरफ्तारी नहीं हो सकी। तपेश्वर दुसाध चौकीदार तथा बालचंद दुसाध को भी तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया। तपेश्वर दुसाध के 75 वर्षीय पुत्र गणेश पासवान ने लेखक को बताया कि उनके पिता को पुलिस द्वारा इतनी पिटाई की गई थी कि कई माह तक वे जेल में बीमार रहे।

इस घटनाक्रम की तत्काल प्राथमिकी नबीनगर कैंप थाना में केस नं 5, दिनांक 21 अगस्त 1942 के अंतर्गत दर्ज है, जो औरंगाबाद थाना में 26 अगस्त 1942 को दर्ज हुआ। इस घटना के मुख्य मुजरिम केशरी राम, उनके पिता देनी राम, अब्दुल गफूर मियां (सभी टंडवा निवासी), ग्राम खैरी के राम गुलाम सिंह तथा देशभक्त चौकीदार तपेश्वर दुसाध के अलावा घटना में शामिल अन्य अज्ञात 500 से अधिक लोगों पर धारा 148, 307, 353 तथा 379 आई.पी.सी. की धारा के अंतर्गत केस दर्ज किया गया। केस का

जांच अधिकारी नबीनगर थाना कैंप का सब इंस्पेक्टर रघुनाथ सिंह था। उस समय यह क्षेत्र गया जिला के अंतर्गत था। जिला से इस घटना की चार्जशीट 14 अक्टूबर 1942 को जारी की गई, जिसका केस नं 440, 42 था।

दिनांक 21 अगस्त 1921 को घटित घटना के फलस्वरूप मात्र छह लोगों के नाम से प्राथमिकी दर्ज की गई मगर दिनांक 14 अक्टूबर 1942 को जिला पुलिस मुख्यालय से जारी चार्जशीट में 17 अभियुक्तों का नाम दर्ज था। चार्जशीट के अनुसार 17 लोगों में 7 लोग ही गिरफ्तार हुए, जबकि 10 लोगों को फरार घोषित किया गया। सात गिरफ्तार लोगों में चंद्रगढ़ के बालकेश्वर राम और छेदी राम(दोनों चंद्रवंशी), टंडवा के दीनानाथ साव एवं जिबोधन सौंडिक, बसडिहा के बालचंद दुसाध एवं महेश सिंह तथा खैरी के तपेश्वर दुसाध (जो चौकीदार थे) शामिल थे। अंग्रेजी हुकूमत द्वारा फरार घोषित 10 लोगों में ग्राम टंडवा के केशरी राम एवं उनके पिता देनी राम, अब्दुल गफूर तथा केदार साव, ग्राम पुरहरा के नथूनी हजाम तथा ग्राम बेनी गंजहर के बलराम सिंह, रामदेव सिंह, कुंअर सिंह एवं सुबा सिंह उल्लेखनीय थे। हैरतअंगेज बात यह थी कि अंग्रेज अधिकारी द्वारा केशरी राम को गोली मारे जाने की घटना को दबा दिया गया। सरकार को आशंका थी कि इस घटना के प्रतिरोध में हुकूमत का विरोध और तेज हो जाएगा, इसलिए बड़ी चालाकी से गोरी सरकार ने गोली मारे जाने की घटना पर पर्दा डाल दिया। यह बात सच है कि मौका–ए–वारदात पर उनकी मौत नहीं हुई थी, मगर इस घटनाक्रम के दो दिनों के अंदर ही वे इस दुनिया से कूच कर गए थे। इधर अंग्रेज सरकार जानबूझकर लोगों को बरगलाने के लिए वारंट पर वारंट जारी करती रही। चूंकि केशरी राम तत्कालीन औरंगाबाद अनुमंडल के 1942 की क्रांति के हीरो बन चुके थे और बहुत पहले से अंग्रेजी हुकूमत की आंखों पर चढ़े हुए थे, इसलिए उनके पीछे सरकार के मुखबिर सदा चौकस रहते थे। सरकार की सोच थी कि केशरी के मारे जाने के उपरांत पिता देनी राम सहित सारे क्रांतिकारी–कुनबे शान्त हो जाएंगे। वाकई इस घटना का असर टंडवा में दिखा। पुलिस के आतंक की वजह से अनेक क्रांतिकारी–परिवार अपने गांव छोड़कर भाग गए। स्वतंत्रता सेनानी केदार साव के पुत्र राधाकृष्ण प्रसाद (जन्म 1950) ने इस लेखक को अपने पिता के हवाले बताया कि केशरी राम के मारे जाने के बाद उनके पिता अंग्रेजी हुकूमत के भय से टंडवा छोड़कर जंगल में चले गए थे। उनकी घर वापसी तभी हुई, जब देश आजाद हुआ।

शहादत की कहानी : लोगों की जुबानी

1942 के स्वतंत्रता संग्राम में भारत माता का जांबाज सिपाही केशरी राम की शहादत की कहानी थाना टंडवा के इर्द–गिर्द के गांवों में बड़े–बुजुर्गों से आज भी सुनने को मिलती है। उन्हें फख्र है कि वे टंडवा के बहादुर लाल थे। शहीद केशरी की इकलौती संतान किसमती कुंवर अपने इकलौते पुत्र विंध्याचल प्रसाद के साथ नबीनगर शहर के न्यू एरिया मुहल्ले में रहती हैं। 80 वर्ष का होने के बावजूद किसमती कुंवर की वाणी और विचार में पिता जैसा ओज आज भी है। वह बचपन से सुनती आई है कि वह पिता पर गई है अर्थात उसका रूप–रंग, रहन–सहन, बात–विचार तथा बोलने–बतियाने का ढंग, सबकुछ पिता से मिलते हैं। यह बात दीगर है कि जब 1942 में पिता की शहादत हुई थी, उस समय वह दो–तीन माह की थी। जब बड़ी और समझदार हुई, तब अपने दादा स्वतंत्रता सेनानी देनी राम तथा चाचा रामविलास से अपने क्रांतिकारी पिता की वीरता की कहानी बड़े ही चाव से सुना करती थी। उसके लिए पिता किसी देवता से कम नहीं हैं।

शहीद केशरी के पारिवारिक सूत्रों, किसमती कुंवर एवं उनका पुत्र विंध्याचल प्रसाद के अलावा देनी राम के सगे भाई देवकी राम के पोता उमेश चंद्रवंशी एवं केशरी राम के भाई रघुनाथ प्रसाद का पुत्र अगम अखिलेश ने सर्वोदय विद्या भारती, जपला के डायरेक्टर निरंजन प्रसाद की उपस्थिति में लेखक को जो जानकारी उपलब्ध कराई है, उसके अनुसार उनकी शहादत की कहानी की तथ्यात्मक रूपरेखा निम्नवत बनती है, जो अन्य लोगों से ली गई जानकारी से मेल खाती है। उनके भावों को मैंने सिर्फ शब्द में पिरोने का काम किया है।

दिनांक 21 अगस्त 1921 को टंडवा की सरकारी शराब भट्ठी पर केशरी राम एवं अन्य क्रांतिकारियों के नेतृत्व में 500 से अधिक देशभक्तों द्वारा हमला बोले जाने के लगभग एक सप्ताह के उपरांत औरंगाबाद से गोरी पलटन के साथ एक अंग्रेज अधिकारी हाथी पर सवार होकर टंडवा आया था। केशरी राम के दरवाजे के समक्ष एक विशाल पीपल का वृक्ष था। हाथी वहीं आकर रूका। शायद अंग्रेज अधिकारी को इस बात का पता था कि केशरी राम के नेतृत्व में देशभक्तों की चौपाल इसी विशाल वृक्ष के नीचे लगती है। गोरी पलटन को देखते ही टंडवा के घर और दुकानें धड़ाधड़ बंद हो गई और पुरुष जंगल की ओर भाग गए। इधर अंग्रेज अधिकारी का हाथी पीपल का पत्ता और मुलायम टहनी खाने में व्यस्त था, उधर उसके सिपाही केशरी राम, उनके पिता देनी राम तथा अब्दुल गफूर मियां को ढूंढ रहे थे। वह किसी भी परिस्थिति में केशरी राम को गिरफ्तार करना चाहता था। जब सफलता हाथ नहीं लगी, तो उसने आतंक का माहौल कायम करने के लिए अपने साथ आए टामी दल को घरों में आग लगाने का आदेश दे दिया। चंद मिनटों के बाद घर धू–धू कर जलने लगे। उस समय केशरी राम घर के पिछवाड़े थोड़ी दूरी पर गाय–भैंस चरा रहे थे। आगजनी की घटना की जानकारी मिलते ही वे इतने आक्रोशित हो गए कि वहां से भागने की बजाय उन्होंने पीपल के वृक्ष की ओट में आकर पहले से जमा किए गए पत्थरों से अंग्रेज अधिकारी पर हमला बोल दिया। उस समय गोरी पलटन के सिपाही टंडवा गांव के अन्य क्षेत्रों में तलाशी अभियान चला रहे थे और अंग्रेज अधिकारी वहीं देनी राम के घर से थोड़ी ही दूरी पर खड़ा था। इस अप्रत्याशित हमला से गोरा अधिकारी घबड़ा गया। उसने आव देखा न ताव, सीधे गोली चला दी। गोली केशरी के सीने में लगी और वहीं गिर गये। उनके चाचा देवकी राम तथा घर के अन्य सदस्य घायल केशरी को वहां से ले भागे। उधर गोरा अधिकारी इतना भयभीत था कि वहां से भाग निकलने में ही अपनी भलाई समझी।

इधर वीर केशरी की सांसें चल रहीं थीं। बेहोशी की हालत में भी वे भारत माता की जय–महात्मा गांधी की जय–बड़बड़ा रहे थे। चूंकि वे अंग्रेजी हुकूमत के निशाने पर थे और दूर–दराज ले जाकर

चिकित्सकों से इलाज कराने पर पकड़े जाने की संभावना प्रबल थी, इसलिए परिवार के लोगों ने स्थानीय देहाती वैद्य से ही इलाज कराना उचित समझा। वैद्य की दिन–रात कोशिश के बावजूद केशरी की जान नहीं बचाई जा सकी। वे 30 अगस्त 1921 को शहादत को प्राप्त हो गये। क्रांतिकारी केशरी की शहादत की खबर पहले से दहशतजदा टंडवा के लोगों को मिली। गोरा पलटन की दहशत इतनी हावी थी कि लोग घटना का विरोध क्या करते, उलटे घर छोड़कर जंगल की ओर भाग गए। इस क्रांतिदल में केशरी के सिवा कोई और बहादुर क्रांतिकारी नहीं था, जो इस घटना के प्रतिरोध में जुलूस–प्रदर्शन निकाल सके। उनके पिता देनी राम हक्का–बक्का और किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। एक पिता के सामने जवान पुत्र की हत्या ने उन्हें अंदर तक तोड़ दिया। पारिवारिक सूत्रों से मिली जानकारी के अनुसार, हुकूमत द्वारा उनकी भी हत्या की साजिश रची जा रही थी। इस प्रतिकूल और भयपूर्ण वातावरण में यदि परिवार के लोग भयभीत हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। इन सारी घटनाओं का परिणाम यह निकला कि केशरी राम सरकारी दस्तावेजों में न मरे और न गिरफ्तार हुए। इस प्रकार की जादूगरी अंग्रेजी हुकूमत ही कर सकती थी। उसने गांधी जी को भी गायब करने की कोशिश की थी।

इस घटना के सह आरोपी अब्दुल गफूर मियां घटना को अंजाम देने के उपरांत अंग्रेजी हुकूमत को चकमा देने के लिए लंबा टीका और गेरूआ वस्त्र धारण कर साधु बन गये थे। मगर बाद में हकीकत का पर्दाफाश होते ही उन्हें गिरफ्तार कर गया जेल भेज दिया गया। उनके पुत्र लेयाकत अली (1949 में जन्म) ने उक्त घटनाक्रम को सही बताते हुए कहा कि उनके पिता लोकनायक जयप्रकाश के शिष्य थे और वर्षों तक उनके आश्रम में रहे। केशरी राम से उनकी जबरदस्त दोस्ती थी। गांधी जी के विचारों को फैलाने तथा आजादी का बीज बोने के लिए दोनों दोस्त गांव–गांव जन–जागरण में लिप्त रहते थे।

इस घटना के अन्य आरोपी स्वतंत्रता सेनानी दीनानाथ साव के 59 वर्षीय पोता विनोद प्रसाद गुप्ता ने अपनी दादी इन्द्रमणि कुंवर के हवाले से बताया कि जब गोरा पलटन द्वारा केशरी राम को गोली मारी गई थी, तो कई दिनों तक टंडवा शोक और दहशत में डूबा रहा। स्वतंत्रता सेनानी तपेश्वर दुसाध के पुत्र गणेश पासवान ने बताया कि उनके पिता शहीद केशरी राम की जांबाजी और शहादत की कहानी सुनाया करते थे।

बिहार सरकार में पर्यटन मंत्री रह चुके सुरेश पासवान ने इस लेखक को बताया कि औरंगाबाद के उत्तरी क्षेत्र में क्रांतिकारियों का नेतृत्व जगतपति प्रसाद ने किया, जबकि औरंगाबाद दक्षिणी क्षेत्र में आजादी की लड़ाई केशरी राम के नेतृत्व में लड़ी गई थी। दोनों अमर क्रांतिकारी शहीद हो गए, मगर वे अंग्रेजों के समक्ष घुटना नहीं टेके।

केशरी राम की पुत्री किसमती कुंवर ने अपने जन्मकाल का मर्मस्पर्शी अनुभव सुनाते हुए कहा कि पिता की शहादत के उपरांत पिता की हत्या का सदमा उनकी मां जिरमनिया देवी बर्दाश्त नहीं कर सकीं और कुछ ही माहों के उपरांत वे भी बिल्कुल अनाथ छोड़कर इस दुनिया से कूच कर गयी। उनका बचपन दादा–दादी और चाचा–चाची के साये में गुजरा। उन्होंने अपने शिशुकाल की एक दिलचस्प घटना अपने पालनहार चाचा रामविलास के हवाले से बताई। जब गोरा पलटन द्वारा उनके पिता को भून डाला गया था, उस समय वह दूधमुंही बच्ची एक पालना में थी, जो उसी विशाल पीपल के वृक्ष की एक टहनी से झूल रहा था, जहां गोरा अधिकारी का हाथी था। हत्या की घटना से बदहवास लोग इधर–उधर भाग रहे थे। मां बेहोश हो चुकी थी। पीपल की टहनी से लटके पालना में पड़ी शिशु किसमती का ख्याल किसी को नहीं रहा। घंटों बाद जब रोने की आवाज आई, तब उनके चाचा रामविलास दौड़कर आए और गोदी में उठाकर ले गए। परिवार के लोग इस बात से हैरत में थे कि गोलीबारी और पत्थरबाजी का केंद्र वही पीपल का वृक्ष था, मगर शिशु को इन वारदातों के दौरान एक खरोंच तक नहीं लगी, जबकि हाथी भी वहीं पर था। इसीलिए उन्हें परिवार के लोग किसमतिया कहकर बुलाने लगे। बाद में उनका यही नाम रूढ़ हो गया।

शहीद केशरी राम का अधूरा स्मारक

शहीद केशरी राम के भतीजा तथा देवकी राम का पोता समाजसेवी विजय प्रसाद (अब दिवंगत) ने शहीद केशरी राम का वास्तविक इतिहास का संग्रह कर बिहार सरकार के मंत्रियों और जिला के आला अधिकारियों को इस सच्चाई से रूबरू कराया था कि शहीद केशरी राम की शहादत के बावजूद आजाद भारत सरकार ने कभी सुध नहीं ली। बिहार सरकार के मंत्री और सरकारी पदाधिकारियों ने जब दस्तावेजों की जांच की, तो यह बात सही पाई गई कि शहीद के प्रति भूलवश अन्याय हुआ है। बिहार सरकार के तत्कालीन कल्याण मंत्री रमई राम ने टंडवा में आकर दिनांक 10 अपैल 1994 को उनके ही घर के सामने शहीद स्थल पर शहीद केशरी राम के स्मारक का शिलान्यास किया। यह वही स्थान है, जहां कभी विशाल पीपल का पेड़ था। इसी शिलापट्ट से ज्ञात हुआ कि उनकी शहादत 30 अगस्त 1942 को हुई थी। इस शिलान्यास स्थल पर तत्कालीन राजद विधायक भीम यादव की विधायक निधि से स्मारक का पक्का एवं बड़ा आधार–ढांचा खड़ा किया गया, मगर सर्वाधिक दुखद और अपमानजनक पहलू यह है कि उस स्मारक के शीर्ष पर स्थित पैडल स्टैंड पर 27 वर्षों के बाद भी शहीद केशरी की प्रतिमा नहीं लगी। यह बेहद अफसोसनाक है कि केशरी राम शहादत के पूर्व एक देशभक्त क्रांतिकारी थे और शहादत के उपरांत उन्हें एक जाति के नजरिए से देखा गया। यह भारतीय समाज की विडंबना है कि मुट्ठी भर लोगों ने इतिहास को अपने नाम कर लिया है, जबकि स्वतंत्रता संग्राम में सर्वाधिक योगदान पिछड़े समाज का रहा है। केशरी राम के पिछड़े समाज से होने के कारण न तो उनकी प्रतिमा लगी और न उनकी इकलौती संतान किसमती कुंवर को स्वतंत्रता सेनानी आश्रित सम्मान ही दिया गया। सरकारी सहायता और शहीद के नाम पर भवन, सड़क, कॉलेज का नामकरण तो बड़ी दूर की बात है।

(सबाल्टर्न समाज के नायकों पर लेखक निरंतर काम करते रहे हैं। संप्रति झारखंड इनकी कर्मभूमि है।) ■

रामनरेश यादव

जुब्बा सहनी : अगस्त क्रांति के तरुण शहीद

'हां, दारोगा वालर को मैंने मारा।' जज के पूछने पर जुब्बा सहनी ने निर्भीकता से जवाब दिया था।

'तुम्हारे साथ और कौन–कौन लोग थे?' जज ने फिर सवाल दागा।

'उस कायर को आग के हवाले करने के लिए मैं अकेला ही काफी था।' उसने जवाब दिया।

'तुम्हें किरोसिन और माचिस किसने दी थी' फिर से एक प्रश्न उनके सामने था।

'मैंने सब अपने साथ लाया था।'

एक अजीब–सा सुकून को अपने चेहरे पर ओढ़े हुए जुब्बा सहनी ने दारोगा लियो वालर की हत्या की बात स्वीकार की तो कोर्ट में सन्नाटा छा गया। यह इकबालिया बयान उन्हें फांसी के फंदे तक ले जाने के लिए काफी था। सारा इल्जाम खुद पर लेकर अपने 54 साथियों को बरी करवाने वाले जुब्बा सहनी को जब मौत की सजा सुनाई गई तब उनके हृदय में असीम आत्मसंतोष का भाव था। उन्हें इस बात का गुमान था। कि वे भी देश की आजादी के काम आ रहे हैं। उन्हें इस बात का भी फख्र था कि उनके कबूलनामे से उनके साथियों की जान बच गई। भागलपुर केन्द्रीय कारा में 11 मार्च 1944 को इस अनोखे क्रांतिकारी को फांसी पर लटका दिया गया। आजाद और खुशहाल भारत का सपना संजोए एक देशभक्त की काया इस देश की मिट्टी में मिल गयी।

घटना 16 अगस्त 1942 की है। पूरा देश अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सड़कों पर था। दुनिया उस आंदोलन को अगस्त क्रांति के नाम से जानती है। चारों ओर 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा गूंज रहा था। बम्बई के ग्वालिया टैंक मैदान से 08 अगस्त 1942 को गांधी जी ने 'करो या मरो' का नारा दिया था। शीर्ष नेतृत्व वर्ग की गिरफ्तारी की खबर फैलते ही आंदोलन स्वतःस्फूर्त चरण में चला गया था। रेल की पटरियां उखाड़ी जा रही थीं, टेलीफोन के तार काटे जा रहे थे तथा दफ्तरों पर कब्जा कर तिरंगा फहराये जा रहे थे। पुलिस थाने लोगों के खास निशाने पर थे। लोग जानते थे कि स्वराज लाने के लिए अंग्रेजी ताकत के इन केन्द्रों को ध्वस्त करना जरूरी है। दफ्तरों और थानों पर तिरंगा फहराने के दौरान सैकड़ों लोग शहीद हो चुके थे। 11 अगस्त को पटना में सचिवालय पर तिरंगा फहराने के दरम्यान छात्रों का एक जत्था गोलियों का शिकार हो चुका था। फिरंगी सिपाहियों की गोली से सात छात्र शहीद हो चुके थे। इन खबरों से लोगों में गुस्सा व जोश उफान पर था। देशवासियों को ऐसा लगने लगा था कि हम शीघ्र ही आजाद होने वाले हैं। लोगों ने गांधी का नारा 'करो या मरो' का अर्थ अहिंसा से परे जाकर लिया। आजादी हासिल करने के जुनून में लोग मर मिटने के साथ–साथ हिंसा से भी परहेज नहीं कर रहे थे। बिहार के अन्य थानों की तरह मुजफ्फरपुर जिले के मीनापुर थाना पर भी तिरंगा फहराने की तैयारी चल रही थी। इलाके के युवा गंज बाजार में जमा हो चुके थे। सभी के हाथ में तिरंगा और हृदय में कुछ कर गुजरने का जज्बा था। जुलूस थाने की ओर बढ़ रहा था। गगनभेदी नारों से आसमान का सीना छलनी हो रहा था। दारोगा लियो वालर के पास पर्याप्त संख्या में पुलिस बल नहीं था। क्रांतिकारियों का एक जत्था 12 अगस्त को थाने पर तिरंगा फहराने का असफल प्रयास कर चुका था। इन्होंने इसलिए दारोगा लियो वालर कुछ ज्यादा ही चौकन्ने थे। थाना की सुरक्षा व्यवस्था चाक–चौबंद रखने के लिए इलाके के कुछ जमींदारों के यहां से बंदूकधारी गुंडों को बुला रखा था। जुलूस जब थाने के निकट पहुंचा तो दारोगा ने स्वयं मोर्चा संभाल लिया। जुलूस को रोकने के लिए हुई फायरिंग में एक गोली 32 वर्षीय वांगुर सहनी को लगी और वे शहीद हो गए। वांगुर सहनी, जो रिश्ते में जुब्बा सहनी के भाई लगते थे, के शहीद होते ही जुलूस बेकाबू हो गया। थाने की सुरक्षा में तैनात गुंडे और पुलिस बल भाग खड़े हुए। दारोगा भी भागकर गन्ने के खेत में छुप गया। जहां से दारोगा को जुब्बा सहनी और उनके साथियों ने घसीटते–पीटते

जुब्बा सहनी की जिंदगी मुफलिसी में बीत रही थी। बागमती और बूढ़ी गंडक के बीच के इस इलाके की खेती बाढ़ और सुखाड़ से लगातार प्रभावित रहती ही थी इसलिए मजदूरों को काम खोजने में दिक्कत होती थी। परिस्थितियों से जूझ रहे जुब्बा सहनी भीखनपुर चीनी मिल से जुड़े गन्ने के खेतों में काम करने लगे। वहां मजदूरी तो कम थी परंतु काम नियमित मिल जाता था। मिल के सारे हाकिम अंग्रेज थे या फिर बंगाली।

थाने पर लाया। वांगुर सहनी की मौत से आक्रोशित भीड़ त्वरित न्याय चाहती थी। दारोगा को उनके ही टेबुल से बांधकर आग लगा दी गई, जिंदा जलाकर मार दिया गया। थाना परिसर से यूनियन जैक उतारा जा चुका था और तिरंगा सावन की पुरबैया में शान से लहरा रहा था। अगले दिन देश–विदेश के अखबारों में यह घटना सुर्खियां बनीं। लम्बे दमन चक्र के बाद जुब्बा सहनी गिरफ्तार कर लिये गए। जुब्बा सहनी के इस कृत्य में पूरी भीड़ उनके साथ थी। परंतु जब कोर्ट में सुनवाई हो रही थी तो उन्होंने सारा इल्जाम अपने सिरऊपर लेकर अपने साथियों को बचा लिया था। पूरा इलाका उनके इस कृत्य से श्रद्धावनत हो गया था परंतु फांसी की सजा के बारे में जिन्होंने भी सुना उनके आंखों के कोर कई दिनों तक नोर से भींगते रहे।

जुब्बा सहनी का जन्म मुजफ्फरपुर जिला के मीनापुर थाना क्षेत्र अन्तर्गत चैनपुर गांव के एक निर्धन मछुआरा पांचू सहनी के घर 1906 ई. में हुआ था। गरीबी के पथकंटकों ने उन्हें बचपन में ही साहसी बना दिया था। जीवन–संघर्ष ने उनको जीवटता से लबालब भर दिया था। विपरीत परिस्थितियों में लक्ष्य को भेदना उनका स्वभाव बन चुका था। मछली मारना जहां उनका शौक था, वहीं मजदूरी करना उनकी विवशता। अंग्रेजी राज में चैनपुर के बच्चों के लिए शिक्षा दूर की कौड़ी थी। भले ही गरीबी की मजबूरी और घर से विद्यालय की कई कोस की दूरी ने जुब्बा सहनी को शिक्षा से वंचित रखा परंतु उनकी दुनियादारी की समझ अव्वल दर्जे की थी।

जुब्बा सहनी की जिंदगी मुफलिसी में बीत रही थी। बागमती और बूढ़ी गंडक के बीच के इस इलाके की खेती बाढ़ और सुखाड़ से लगातार प्रभावित रहती ही थी इसलिए मजदूरों को काम खोजने में दिक्कत होती थी। परिस्थितियों से जूझ रहे जुब्बा सहनी भीखनपुर चीनी मिल से जुड़े गन्ने के खेतों में काम करने लगे। वहां मजदूरी तो कम थी परंतु काम नियमित मिल जाता था। मिल के सारे हाकिम अंग्रेज थे या फिर बंगाली। गांधी जी उन दिनों नमक सत्याग्रह छेड़े हुए थे जिसकी चर्चा चोरी–छिपे मजदूरों के बीच होती रहती थी। जब कभी अंग्रेजी हाकिमों के कान में कांग्रेस, गांधी, जुलूस, झंडा जैसे सुनाई पड़ जाते तो अकेले में बुलाकर उनकी अच्छी खातिरदारी होती थी। 26 जनवरी 1930 का दिन था। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के फैसले के अनुसार पूरे देश में जगह–जगह तिरंगा फहराये जा रहे थे। जोश में जुब्बा सहनी भी थे। उन्होंने ईख से लदे बैलगाड़ी के ऊपर तिरंगा लगा दिया था और नारे लगाते हुए चीनी मिल की ओर चले जा रहे थे। जब वे बैलगाड़ी लेकर मिल परिसर पहुंचे तो केन (गन्ना) सुपरवाइजर तिरंगा देखते ही भड़क उठा और जुब्बा को गालियां देने लगे। जुब्बा भी अन्याय कहां बर्दाश्त करने वाले थे! उन्होंने भी केन मैनेजर पर ताबड़तोड़ जवाबी हमला करते हुए पीट दिया। उन्हें गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। कुछ महीने बाद उन्हें जमानत तो मिली परंतु काम छूट गया था।

जुब्बा सहनी एक बार फिर से पारंपरिक पेशे में लगे थे। जैसे–तैसे नून–रोटी चल रही थी परंतु उनके मन–मस्तिष्क में देश के प्रति अनुराग बढ़ता ही जा रहा था। दिसम्बर 1932 ई. की बात है। कांग्रेस के आह्वान पर शराब की दुकानों की पिकेटिंग चल रही थी। मुजफ्फरपुर के सरैया गंज मारवाड़ी धर्मशाला के निकट ऐसे ही पिकेटिंग में जुब्बा भी शामिल थे जहां पुलिसिया लाठीचार्ज में जुब्बा सहनी समेत कई आंदोलन कारी गंभीर रूप से घायल हो गए थे। घायलों को गिरफ्तार कर जमानत पर छोड़ा गया था। उस घटना में जुब्बा सहनी की तीन पसलियां चटक गईं। वे कई महीनों तक दर्द झेलते रहे। जवाहर लाल नेहरू एक बार मुजफ्फरपुर आये। उन्होंने मंच पर बुलाकर उन्हें गले लगाया और उनके जुझारू तेवर को सलाम किया स्वयं और देशवासियों को उनके दुख का साथी होने की बात कही। यह उद्‌गार सुनकर उनके दर्द हल्के होते रहे तथा देशसेवा का जज्बा परवान चढ़ता रहा। वर्ष 1934 के 14 जनवरी को बिहार के बड़े भूभाग पर विनाशकारी भूकंप आया था। जान–माल की भारी क्षति हुई थी। दरभंगा और मुंगेर में भयानक मंजर था। मुजफ्फरपुर भी विनाशलीला से अछूता नहीं था। कांग्रेस की ओर से अनगिनत राहत दल बनाया गया था। मुजफ्फरपुर में ध्वजा प्रसाद साहू के नेतृत्व में गठित एक राहत दल में राम चरित्र सहनी के साथ जुब्बा सहनी भी जुड़ गए थे। खुद की भूख–प्यास की परवाह किये बगैर वे महीनों तक भूकंप पीड़ितों की सेवा में लगे रहे।

जुब्बा सहनी की शहीदी गाथा भारतीय स्वातंत्र्य इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में दर्ज है। देशसेवा की राह पर जब भी त्याग और बलिदान की बात होगी अपनी जान की परवाह न करने वाले शहीद जुब्बा सहनी एक आदर्श के रूप में आमजन के मानस पटल पर दस्तक देते रहेंगे। जिस भागलपुर जेल में उन्हें फांसी दी गई थी अब उसका नाम इस अमर शहीद के नाम कर दिया गया है। मुजफ्फरपुर में उनकी स्मृति में एक पार्क है। लेकिन उनका परिवार अभी भी शिक्षा की रोशनी से दूर मुफलिसी में दिन गुजार रहा है। सोचने वाली बात है कि जिन सपनों को संजोते हुए वे शहीद हुए थे क्या वे पूरे हुए! वे जिस वंचित वर्ग से आते थे उनके हिस्से का स्वराज आया?

(लेखक मधुबनी के मूल निवासी हैं। सामाजिक न्याय आंदोलन पर इनकी गहरी पकड़ है।) ■

रामफल मडंल : एक विस्मृत शहीद

'हां, हुजूर! पहला फरसा मैंने ही मारा था।' क्रांतिकारी रामफल मडंल ने जज को गर्वीले स्वर में जवाब दिया तो कोर्ट में सन्नाटा छा गया। जज हतप्रभ रह गए और वकील किंकर्तव्यविमूढ़। जिनकी आंखों के सामने फांसी का फंदा झूल रहा हो, उनके ललाट पर पसीने की एक बूंद तक नहीं थी। अंग्रेजी अदालतों में जहां छोटी–छोटी सजा सुनाते वक्त बड़े–बड़े हिम्मतवरों का हौसला पस्त हो जाता था, वहीं यह महामानव अलग ही मिट्टी का बना हुआ था। सच्चाई, ईमानदारी, बहादुरी, देशसेवा, त्याग और सब कुछ उत्सर्ग कर देने की भावना से उनके मुखमंडल ने सबको अचंभे में डाल दिया था। जज अपनी विस्फारित नजरों से मौत से बेखौफ किसी गर्वोन्नत इंसान को अपनी जिंदगी में पहली बार देख रहा था।

जज ने रामफल मंडल को फांसी की सजा सुनाई तो उन्हें कदाचित विस्मय नहीं हुआ। ऐसा लगा जैसे वे पहले से सोच रखे हों कि क्रांति की डगर पर चलने वालों का यही अंजाम होना है। उनको जरा–सा भी अपनी परवाह नहीं थी, उन्हें चिंता थी तो बस देश की। सजा सुनाने के बाद जब उन्हें वापस जेल भेजा जा रहा था, इस क्रांतिवीर ने जोर से हुंकार भरते हुए गरजा था, 'भले मुझे फांसी पर चढ़ा दो, पर देश आजाद होकर रहेगा। देश पर मर–मिटने वाले वीर–बांकुरों की अब कमी नहीं रहेगी। अंग्रेजी शासन तेरा नाश होकर रहेगा।

23 अगस्त 1943 की अहले सुबह उन्हें जगा कर स्नान कराया गया तो उनको समझ में आ चुका था कि उनकी अंतिम घड़ी आ चुकी है। फांसी के फंदे की ओर आगे बढ़ते हुए उन्होंने जोर से नारा लगाया, 'भारत माता की जय।' ठीक चार बजे क्रांतिकारी रामफल मडंल ने हंसते–हंसते फांसी के फंदे को गले लगा लिया था। भले ही उनका शरीर तवलीन हो चुका था, लेकिन उनके बोये क्रांति की चिंगारी तब भी हजारों दिलों में ज्वाला भड़का रही थी, आज भी देशप्रेम की लौ जला रही है। अगस्त क्रांति के अमर शहीद रामफल मंडल का जन्म 06 अगस्त 1924 को सीतामढ़ी जिले के बाजपट्टी थाना अन्तर्गत मधुरापुर गांव में सामाजिक और शैक्षिक रूप से अत्यंत पिछड़ा समाज धनुर्वंशी धानुक कुल में हुआ था। उनकी मां गरबी देवी और पिता गोखुल मंडल थे। रामफल मंडल चार भाइयों में तीसरे स्थान पर थे। उनके बड़े भाई राम शरण मंडल एवं महंथ मंडल थे, जबकि मिश्री मंडल उनसे छोटे थे। सभी भाई मिलकर किसानी में पिताजी का हाथ बंटाया करते थे। गाय–भैंस चराना और दूध पीकर पहलवानी करना सभी भाइयों का शौक था। गांव में इनके पिताजी की एक छोटी–सी किराने की दुकान थी। वे पशुओं की खरीद–बिक्री भी करते थे, जिससे उनके बड़े परिवार की बढ़ी हुई जरूरतों के लिए आमदनी का जुगाड़ हो पाता था।

रामफल मंडल के पिता शिक्षा के महत्व से परिचत थे। वे चाहते थे कि उनके बच्चे पढ़ें, इसलिए रामफल मंडल का नामांकन स्थानीय विद्यालय में करवाया गया। 14 वर्ष की अवस्था में वे मिड्ल परीक्षा पास कर गए थे। लेकिन पहलवानी में रुचि के कारण आगे नहीं पढ़ पाये। उन्हें अखाड़ों में आनंद आने लगा था। वे अपने से ज्यादा उमर के पहलवानों को पछाड़ने लगे थे। सत्यनिष्ठा और ईमानदारी इनके स्वभाव में शामिल था। एक बार की बात है, पहलवानी में इनका मुकाबला बराबरी पर छुटा था, परंतु समर्थक इनकी जीत की घोषणा कर रहे थे। इनको ईनाम देने की तैयारी थी, परंतु उन्होंने लेने से इंकार कर दिया था। उनके कहने पर ईनामी रकम आधी–आधी बांट दी गई थी। झूठ बोलने वालों से उन्हें सख्त नफरत थी।

रामफल मंडल बांका नौजवान थे। उनका सुगठित शरीर कसरती कौशलों से निखार पाया था। सुबह में घंटों पसीना बहाना उनकी दिनचर्या में शामिल था। 5 फीट 5 इंच का औसत कदकाठी, गोरा रंग, चमकती आंखें, भव्य ललाट और घुंघराले बाल उनके व्यक्तित्व को सहज ही आकर्षक व मनमोहक बनाते थे। हंसमुख चेहरा, सौम्य एवं मृदुल स्वभाव, मित्भाषी तथा सच बोलने के साहस से लबरेज इस क्रांतिकारी के व्यक्तित्व को अपने साथियों के बीच रोबदार व लोकप्रिय बना दिया था। पहलवान

होने के कारण वे बहुत ही कम उम्र में दूर–दूर तक मशहूर हो चुके थे। विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम के अवसरों पर अखाड़ों में मल्लयुद्ध करते। बड़े–बड़े पहलवानों को मिनटों में पछाड़ने के कौशल उन्हें इलाके में चर्चित कर दिया था। वे लाठी, भाला और फरसा से छद्म युद्ध लड़ने के उस्ताद थे। ताजिया के जुलूसों में लाठी–फरसे से प्रदर्शन करना उनका पसंदीदा खेल था। मात्र 17 वर्ष की आयु में उनका विवाह सीतामढ़ी जिला अन्तर्गत गंगवारा निवासी अमीन मडंल की पुत्री जगपतिया देवी के साथ हुआ। परिवार के मुखिया को खेतीबाड़ी में अतिरिक्त श्रमिक जो मिल जाता था! जगपतिया देवी घरेलू कार्यों में सिद्धहस्त महिला थीं।

उन्नीसवीं सदी का चौथा दशक जनजागरण और क्रांति का दशक था। शहर से लेकर गांव तक आजादी के सपने पल रहे थे। यह वह दौर था जब गांधीजी जी के सत्याग्रह और सुभाष चंद्र बोस के क्रांतिकारी व जज्बाती नारों से प्रभावित हुए बगैर शायद ही कोई रह पाया हो! देश के किसान और मजदूर स्वराजी गीत गाकर निहाल हो रहे थे। स्वतंत्रता सेनानियों के त्याग और बलिदान के किस्से तैरते हुए दूर देहात तक पहुंच रहे थे। नौजवान रामफल मंडल की गांधीजी में श्रद्धा तो थी परंतु उनका जोशीला मन यह मानने के लिए तैयार नहीं था कि अहिंसात्मक आंदोलन से देश को आजाद कराया जा सकता है। उन्हें सुभाष चंद्र बोस की ललकार प्यारी लगती थी। वे अपनी लाठी दिखाकर बराबर कहा करते थे कि इसी लाठी–भाला और फरसा से एक दिन अंग्रेजी शासन को खत्म कर दूंगा।

08 अगस्त 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन, बम्बई में सर्वसम्मति से महात्मा गांधी के नेतृत्व एवं अब्दलु कलाम आजाद के सभापतित्व में एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसे 'भारत छोड़ो आंदोलन' या 'अगस्त क्रान्ति' के नाम से जाना जाता है। महात्मा गांधी के 'करो या मरो' के नारे ने भारत भर के लोगों के मन–मस्तिष्क को उद्वेलित कर दिया था। शीर्ष नेताओं की गिरफ्तारी से आंदोलन जनता के हाथों में जाकर अराजक हो चुकी थी। अगस्त क्रान्ति की ज्वाला की लपटें इतनी ऊंचाई को छू रही थी कि इसने संपूर्ण भारतवर्ष को अपने आगोश में ले लिया था। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के जोशीले भाषण और वक्तव्य ने आंदोलन के इस बदले स्वरूप की पृष्ठभूमि वर्षों से तैयार कर रहे थे। अनुशासित रखने वाले शीर्ष नेतृत्व की अनुपस्थिति में नौजवानों का बेलगाम जोश आंदोलन की आग के लिए घी का काम कर रही थी तथा उसे अराजक बना रही थी। आजादी के दीवानों ने पूरे देश में जहां–तहां टेलीफोन के तार को काट दिये थे, वहीं रेल पटरियां उखाड़ दी थी। जगह–जगह सरकारी कार्यालयों को बंद कर उस पर तिरंगा फहराये जाने लगे थे। यहां तक कि थानों पर कब्जा कर तिरंगा फहराना आम हो चुके थे। चारों ओर धरना, प्रदर्शन व जुलूस निकालने का सिलसिला तेज हो चुका था। देश के कई इलाके खुदमुख्तार हो चुके थे। ऐसा लग रहा था कि देश को स्वाधीन होने में अब ज्यादा देर नहीं है। गांव–गांव में आंदोलन को सफल बनाने के लिए बैठकें और सभाएं आयोजित हो रही थीं। भला मधुरापुर इस आंदोलन में अपना योगदान देने से कैसे चूक सकता था। ऐसी ही परिस्थिति में एक ऐतिहासिक सभा क्रांतिकारी रामफल मडंल के गांव मधुरापुर में भी हुई। युवा ग्रामीण विन्देश्वरी प्रसाद की अध्यक्षता में आयोजित उस सभा में एक युवा क्रांति दल का गठन किया गया। इस दल का नेतृत्व देशभक्ति व बलिदानी जज्बे से लैस युवा क्रांतिकारी रामफल मंडल को दिया गया तथा उन्हें दल का नायक घोषित किया गया। समवेत स्वर में घोषणा की गई कि आगे की लड़ाई युवा जोश रामफल मडंल के नेतृत्व में लड़ी जाएगी।

मधुरापुर में फारवर्ड ब्लाक का गुप्त कार्यालय खोला गया। जहां लाठी, भाला तथा फरसा चलाने तथा बम बनाने की ट्रेनिंग दी जाने लगी थी, वहीं गुरिल्ला युद्ध का भी प्रशिक्षण दिया जाने लगा था। क्रांतिकारी रामफल मडंल ने हरिहर प्रसाद, कपिल देव सिंह, शत्रुघ्न प्रसाद सिंह, मुनेश्वर सिंह, श्रीकृष्ण प्रसाद, जनार्दन झा, रामप्रीत साह, रामचरण मडंल, सहजानंद शर्मा, भवुनेश्वर राय, रामबुझावन ठाकुर, जानकी सिंह और प्रदीप सिंह से सम्पर्क किया तथा आजादी के आंदोलन में अपनी आहुति देने के लिए कुछ बड़ा करने की योजना बनाने लगे। उन दिनों तत्कालीन पुपरी थाना के दारोगा अर्जुन सिंह के आतंक से आमजन परेशान रहते थे। दारोगा के आतंक से पुपरी, बाजपट्टी, नानपुर, बोखरा, चरौत, सौरा और बहेड़ा आदि गांवों के लोग आतंकित रहते थे। आंदोलनकारी लोगों के परिवार उनके खास निशाने पर होता था। दारोगा शक के आधार पर किसी को भी उठा लेते तथा अच्छी खासी खातिरदारी कर हवालात में बंद कर देते थे। वह निर्दोष लोगों को भी उठा लेते तथा उनके परिवार को तंग–ओ–तबाह करते, धन–सपंत्ति कब्जा कर लेते, कीमती सामान और जेवरात गायब कर देते। यहां तक कि वह पीड़ितों के बहू–बेटियों की इज्जत पर हाथ रखने से भी नहीं चूकते थे। उसके अत्याचार से जनता में बौखलाहट का संचार हो रहा था।

19 अगस्त 1942 को अंग्रेजों और उसके पिट्ठू प्रशासनिक अमला ने भारत छोड़ो आंदोलन को कुचलने की नीयत से सीतामढ़ी खादी भंडार के साथ–साथ बाबा नरसिंह दास, रामनंदन सिंह एवं मोहन सिंह के घरों को जला दिया। विश्वस्त सूत्रों से पता चला कि दारोगा अर्जुन सिंह बाजपट्टी में कोहराम मचाने के लिए आने वाला है। दारोगा के जुल्म का उचित प्रतिकार हो, इसके लिए बनगांव (कोठी बाजार) में युवा क्रांति दल के नेता रामफल मंडल के नेतृत्व में एक बठैक हुई, जिसमें बाबा नरसिंह दास, हरिहर प्रसाद, सकलदेव कुंवर, रामबुझावन ठाकुर आदि की उपस्थिति में सकंल्प लिया गया कि आतातायी दारोगा अर्जुन सिंह को मार देना है लेकिन उस दिन दारोगा नहीं आया। युवा क्रांति दल की मंशा की भनक आतातायी दारोगा अर्जुन सिंह को लग चुकी थी, इसलिए कोई बहाना बनाकर वह घटनास्थल पर नहीं आया था। अब कोहराम मचाने की बारी क्रांतिकारियों की थी।

24 अगस्त 1942 को एसडीओ हरदीप नारायण सिंह आंदोलन की गतिविधियों की टोह लेने तथा उसका शमन करने के लिए पुलिस इंस्पेक्टर राममूर्ति झा, सिपाही श्यामलाल सिंह, आर्डर्ली

दरवेशी सिंह तथा ड्राइवर आदित्य राम के साथ बाजपट्टी पहुंचे थे। एसडीओ हरदीप नारायण सिंह बड़े अंग्रेज अफसरों की चाटुकारिता और जनता के दमन के लिए कुख्यात थे। जब एसडीओ अपनी टीम के साथ बाजपट्टी चौक पर पहुंचे तो वहां जोर–जोर से आजादी के नारे लगाये जा रहे थे। आतंक मचाने की नीयत से जब वह अपनी सरकारी गाड़ी से उतरा तो योजना के अनुसार युवाओं का दल वहां पहले से उसका सामना करने के लिए तैयार बैठी थी। युवाओं का यह दल आंदोलनकारियों के जत्थे के साथ एसडीओ की जीप को घेर लिया तथा जोर–जोर से 'भारत माता की जय' के नारे लगाने लगे। स्थिति नियंत्रण से बाहर जाता देख पुलिस प्रशासन चिंतित हो रही थी। इस बीच इंस्पेक्टर राममूर्ति झा ने भीड़ को तितर–बितर करने के लिए अपनी सर्विस रिवॉल्वर से हवाई फायरिंग करने लगा। ऐसा होते ही प्रतिक्रिया में आंदोलनकारी भड़क गए तथा ईंट–पत्थर बरसाने लगे, लाठी–भाला और फरसा भांजने लगे।

इसी बीच दल नायक रामफल मंडल का गर्म खून खौलने लगा था, उन्होंने अपना आपा खो दिया था, उनका फरसा चल चुका था। फरसा की पहली वार ही इतनी भारी थी कि छपाक की आवाज के साथ एसडीओ हरदीप नारायण सिंह की गर्दन कट कर लुढ़क गयी। खून के फव्वारे से आसपास की धरती लाल हो चुकी थी। इधर अन्य क्रांतिकारियों ने इंस्पेक्टर राममूर्ति झा, सिपाही श्यामलाल सिंह और आर्डर्ली दरवेशी सिंह को भी मौत के घाट उतार दिया। जीप में आग लगा दी गई तथा चारों लाश को कंधे पर उठाकर अधवारा नदी में फेंक दिया गया। ड्राइवर आदित्य राम भीड़ और हो हल्ले का फायदा उठाकर भाग खड़ा हुआ। ड्राइवर ने सीतामढ़ी मजिस्ट्रेट कोर्ट पहुंचकर अफसरों की सामूहिक हत्या का मुकदमा कांड संख्या–473/42 दर्ज कराया। इस कांड में रामफल मंडल को मुख्य आरोपी बनाने के अलावा हरिहर प्रसाद, कपिलदेव सिंह एवं बाबा नरसिंह दास सहित अनेक नामजद तथा लगभग चार हजार अज्ञात को हत्याकाण्ड का आरोपी बनाया गया था। प्रशासन की दबिश के कारण सभी लोग फरार हो चुके थे, गांव के गांव खाली हो चुके थे। इधर क्रांतिकारी रामफल मंडल अपनी गर्भवती पत्नी को लेकर अपने बड़े भाई की ससुराल नेपाल स्थित गांव लछमिनिया पहुंच गये थे। बड़े भाई के ससुर नंदू अधिकारी ने उन दोनों को संरक्षण प्रदान किया था।

अगले दिन डीएम और एसपी गाड़ियों के बड़े काफिले के साथ बंदूकों से लैस गोरे सिपाहियों की बड़ी फौज लेकर बाजपट्टी पहुंचे। बनगांव बाजार, मधुबन बाजार, बनगांव गोठ और मधुरपुर में आतंक मचाते हुए आगे बढ़ते रहे। कोई युवा शायद ही उन्हें मिले हों। जो भी मिलता उन्हें बुरी तरह पीटा जाता। आताताइयों ने बच्चों, महिलाओं और वृद्धों को भी नहीं बख्शा। मारपीट और लूटपाट के अलावा गोरे सिपाही बहू–बेटियों की इज्जत के साथ खिलवाड़ करने का कोई मौका नहीं चूक रहे थे। सकैड़ों घरों में आग लगा दी गई। क्रांतिकारी रामफल मंडल के घर को भी जला दिया गया था। रामबुझावन ठाकुर सहित दर्जनों लोगों को कठोर शारीरिक यातनाएं देकर डुमरा जेल भेज दिया गया था। जानकी सिंह वनगांव वाले को उनके दरवाजे पर ही गोली मार दी गई। प्रदीप सिंह को बुरी तरह शारीरिक यातनाएं देकर जेल भेज दिया गया, बाद में उन्हें कालापानी की सजा सुनाकर अंडमान के सेल्युलर जेल भेज दिया गया, वहीं उनकी मौत हो गई। 25 अगस्त 1942 को चरौत में आंदोलनकारियों एवं गोरी पुलिस में मुठभेड़ हुई। इस घटना में भदई कबाड़ी शहीद हो गए। पुपरी के सहदेव साह, महावीर गोप तथा बुझावन ठाकुर गोरी पुलिस के गोलियों का निशाना बन शहीद हो गए। 29 अगस्त 1942 को रीगा के रेबासी गांव में आंदोलनकारी एवं अंग्रेजी पुलिस की गोलीबारी में मथुरा मंडल शहीद हो गए तथा राजाराम मंडल, लीला मंडल, रक्टू मंडल, सूरज कुर्मी, अशर्फी कुर्मी, बंगाली मंडल, नेवी मंडल, यमुना मेहता, नंदलाल मेहता आदि घायल हो गए। रीगा रेलवे स्टेशन पर रेल पटरी उखाड़ने और टेलीफोन तार काटते समय मौजे झा और सुखराम महरा शहीद हो गए तथा ननू मियां घायल हो गए। दो महीने बाद ननू मियां की भी मौत हो गई थी।

पुपरी के लक्ष्मी गुप्ता जो बम बनाने में माहिर थे, डॉ. अभिनंदन वर्मा, बालेश्वर मिश्र, इन्द्रशेखर मिश्र तथा राजनारायण सिंह गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गए। सुरसंड के सुंदर खतवे और उनके भाई को पेड़ पर लटकाकर फांसी दे दी गई। रामलखन गुप्ता को गिरफ्तार कर भयंकर शारीरिक यातनाएं देकर जेल में डाल दिया गया। शिवहरवासी ठाकुर नवाब सिंह को पकड़ कर जेल भेज दिया गया। 30 अगस्त 1942 को तरियानी छपरा में आंदोलनकारियों एवं गोरी पुलिस के मुठभेड़ में बलदेव सूंड़ी, सुखन लोहार, वंशी ततमा, परसत साह, सुन्दर महरा, छठू कानू, जयमंगल सिंह, सुखदेव सिंह, भूपन सिंह एवं नौजाद सिंह शहीद हो गए। बिकन कुर्मी, बुधन कहार, बुझाबन चमार, मुक्ति सिंह, राजेन्द्र धानुक, गुगल धोब पुरन सिंह, गुलजार सिंह, रामेश्वर सिंह, बंगाली नुनिया, मौजे सूंड़ी, चुल्हाई ठाकुर, रामलोचन सिंह, रामदेव सिंह तथा रामपुकार ततमा घायल हो गए।

इधर अंग्रेजी शासन एसडीओ हत्याकांड के आरोपियों को खोजने में दिन–रात एक किए हुई थी। हत्याकाण्ड के मुख्य आरोपी रामफल मंडल तथा अन्य की सूचना देनेवालों के लिए 5000 रुपये ईनाम देने की घोषणा की गई थी। क्रांतिकारी रामफल मंडल से छुप–छुप कर रहना बर्दाश्त से बाहर हो रहा था। मुंह छुपाकर रहना उनके लिए असह्य हो रहा था। अपने बड़े भाई के ससुर के लाख समझाने पर भी नहीं माने कि आप अभी घर नहीं जाएं, वे अपने घर मधुरापुर चले आए। गांव के लोगों ने भी उन्हें समझाया कि आप यहां नहीं रहें, फिर से नेपाल चले जाएं, पर वे किसी की बात नहीं माने। गोरे सिपाहियों को इस बात की भनक लग चुकी थी कि रामफल मंडल मधुरापुर में ही रह रहा है। 06 सितम्बर 1942 की अंधेरी रात के लगभग 01 बजे उनको सोये हुए अवस्था में गोरे सिपाहियों के एक जत्थे ने चुपके से घेरकर गिरफ्तार कर लिया। मधुरापुर के जमींदार किशुन नारायण सिंह के कचहरी में जब वरीय पुलिस अफसरों ने एसडीओ हत्याकांड के बावत पूछताछ किया कि तुम्हारा भी नाम इस केस में है, क्या सही में एसडीओ की हत्या तुमने ही

की है? क्रांतिकारी रामफल ने बिना किसी भय के जवाब दिया, 'हां, मैंने ही सबसे पहला फरसा मारा था और मेरे कहने पर ही सबने मारा है। मैंने ही इंस्पेक्टर का रिवाल्वर छीना था जिसे मैंने खेत में गाड़ दिया है। उनके निशानदेही पर गाड़े हुए रिवाल्वर को निकालकर अफसरों को सौंप दिया गया। कड़ी पूछताछ और पहचान साबित होने के बाद उन्हें डुमरा जेल में बंद कर दिया गया, जहां से छः महीने के बाद उन्हें सेन्ट्रल जेल, भागलपुर भेज दिया गया। उनके जेल में रहने के दरम्यान ही उनकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया जो उन दोनों की पहली संतान थी। भागलपुर सेंट्रल जेल पहुंचकर ग्रामीण जनक मंडल

मैंने ही इंस्पेक्टर का रिवाल्वर छीना था जिसे मैंने खेत में गाड़ दिया है। उनके निशानदेही पर गाड़े हुए रिवाल्वर को निकालकर अफसरों को सौंप दिया गया। कड़ी पूछताछ और पहचान साबित होने के बाद उन्हें डुमरा जेल में बंद कर दिया गया, जहां से छः महीने के बाद उन्हें सेन्ट्रल जेल, भागलपुर भेज दिया गया। उनके जेल में रहने के दरम्यान ही उनकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया जो उन दोनों की पहली संतान थी।

और सहोदर भाई महंथ मंडल ने उन्हें पुत्र रत्न प्राप्ति की सूचना दी। उन्होंने अपने बड़े भाई से कहा, 'भैया अब मैं घर वापस नहीं आ सकूंगा। मुझे तो फांसी की ही सजा मिलेगी। आप मेरी पत्नी और बच्चे का ख्याल रखना, उन्हें पढ़ाना–लिखाना। बड़े हो जाएं तब मेरी कहानी सुनाना, आजादी जरूर मिलेगी। अब जन्म लेने वाले बच्चे आजाद हवा में सांस लेंगे। भारत माता की जय होकर रहेगी।' मात्र आठ महीने बाद नवजात शिशु की मृत्यु हो गई, उनकी पत्नी जगपतिया देवी का अंतिम आसरा भी छिन गया। दुख के अथाह सागर में डूबे उनके परिवार द्वारा यह दुखद सूचना क्रांतिकारी रामफल मंडल तक नहीं पहुंचाई गई थी।

भागलपुर सेशन कोर्ट में इस मामले की त्वरित गति से सुनवाई हो रही थी। अदालत में 12 से 14 अगस्त 1943 तक लगातार तीन दिन तक बहस चली। बिहार कांग्रेस कमेटी द्वारा रामफल मंडल के बचाव में तीन नामी वकीलों को बहस के लिए रखा गया था। इन तीनों वकीलों ने रामफल मंडल को सुझाव दिया, 'कोर्ट में जज के सामने आप कहेंगे कि मैंने नहीं मारा। तीन–चार हजार लोगों के बीच किसने मारा, मैंने नहीं देखा।' परन्तु वे अलग ही मिट्टी के बने हुए थे, झूठ बोलना उन्हें कभी स्वीकार नहीं था। उन्होंने वकीलों को कुछ भी जवाब नहीं दिया, ऐसा लगा कि जैसे सुझाव को उन्होंनें अनसुना कर दिया हो। उनकी आत्मा को वकीलों के सुझाव पर झूठ बोलना गंवारा नहीं था। इजलास में जब जज ने पूछा कि क्या एसडीओ की हत्या तुमने की है? रामफल मंडल ने निर्भयता के साथ अपनी संलिप्तता को स्वीकारा। बाकी के किस्से आप ऊपर पढ़ चुके हैं। अगस्त क्रांति के योद्धा रामफल मंडल को जिला सेशन कोर्ट ने फांसी की सजा सुनाई। भागलपुर सेंट्रल जेल में 23 अगस्त 1943 को सीतामढ़ी के इस वीर सपूत ने भारत माता की बलि वेदी पर अपने प्राण न्योछावर कर दिये। फांसी के फंदे को चूमने से पहले जब उनकी अंतिम इच्छा पूछी गई तो उन्होंने हंसते हुए कहा था, 'हम अंग्रेजी शासन का नाश चाहते हैं, यही हमारी अंतिम इच्छा है।'

रामफल मंडल मात्र 19 वर्ष की आयु में शहीद हो चुके थे, उनकी पत्नी अल्पवयस में विधवा हो चुकी थीं। उनके जीवन का एकमात्र आसरा भी प्रकृति ने उनसे छीन लिया था। पूरी जिंदगी पति और पुत्र के वियोग में जीने वाली जगपतिया देवी के चेहरे पर पहली बार उस दिन हर्ष और संतोष की हल्की–सी रेखा देखने को मिली थी जब 15 अगस्त 1947 को भारत के आजाद होने की खबर मधुरापुर पहुंचा था। जगपतिया देवी खुश होकर लोगों को खबर सुना रही थीं, 'आज उनके शहीद पति का सपना पूरा हो गया है। अंग्रेज भाग गए हैं, देश अब आजाद हो गया है। सुराज मिल गया है, सुराज! देखना अब कोई कष्ट में नहीं रहेंगे।' लेकिन जगपतिया देवी के कष्टों का अंत कहां होने वाला था! जिन सपनों को लेकर उनके पति ने शहादत दी थी, वे सपने ऊपरी तबकों द्वारा बंधक बना लिये गए थे। आजाद भारत में पिछड़ों–दलितों को अपने हक हासिल करने के लिए आजादी का दूसरी जंग लड़ना बाकी था। पिछड़ों–दलितों को शहीद रामफल जैसे क्रांतिकारियों की जरूरत आज भी है, जो अपना हक–हुकूक छिन कर ले सकें। उनकी पत्नी को आजीवन स्वतंत्रता सेनानी पेंशन मिलता रहा, यही पेंशन तथा पति की स्मृति के सहारे उनकी जिंदगी कटती रही।

शहीद रामफल मंडल का नाम अगस्त क्रान्ति के वीर शहीदों को समर्पित तत्कालीन जिला मुजफ्फरपुर स्थित टावर में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। सीतामढ़ी जिले के बाजपट्टी बाजार चौक पर स्थित टावर पर उनका एक आदमकद मूर्ति स्थापित है तथा उनके गांव मधुरापुर के प्राथमिक विद्यालय में उनका नाम जोड़ा गया है। उनके गांव में शहीद का स्मारक स्थल निर्माणाधीन है। संडवारा स्थित नदी पर बना पुल का नामकरण शहीद रामफल मंडल सेतु संडवारा किया गया है। शहीद रामफल मंडल के नाम पर बाजपट्टी में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तथा सीतामढ़ी में शहीद के नाम पर धानुक समाज छात्रावास का निर्माण हुआ है, जो पूर्व सांसद नवल किशोर राय जी के सांसद निधि से समाजसेवी रामनिहोरा मंडल की दान की गई भूखंड पर स्थित है।

रामफल मंडल अगस्त क्रांति के फांसी पर लटकने वाले सीतामढ़ी जिले के पहले क्रांतिकारी थे। उनकी शहादत दिवस पर प्रतिवर्ष उनके गांव स्थित स्मारक स्थल पर शहीद मेला का आयोजन होता है, जिसमें बड़ी संख्या में लोग उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उपस्थित होते हैं।

(लेखक पेशे से शिक्षक हैं। स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में इनकी गहरी दिलचस्पी है।) ■

प्रियंका प्रियदर्शिनी

बहुरिया रामस्वरूप देवी : क्रांति की चिंगारी

आजादी के आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का गौरवमयी इतिहास रहा है। सत्याग्रह से लेकर सशस्त्र क्रांतिपथ तक महिलाएं अपनी सक्रियता और ओजस्विता का लोहा मनवाती रही हैं। लक्ष्मीबाई हों या झलकारी बाई, बेगम हजरत महल हों या ऊदा देवीय–ये सभी रनिवास से खेत–खलिहान तक अपनी बहादुरी से दुश्मनों की आंखों में खौफ पैदा करती रही हैं। 1857–1947 के बीच हुए स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न आंदोलनों में महिलाएं मजबूती से डटी रही हैं। बिहार की धरती पर वीरांगनाओं के त्याग और बलिदान का लम्बा सिलसिला रहा है। जंग–ए–आजादी में बिहारी ललनाओं ने न सिर्फ पुरुषों के कंधे से कंधे मिलाकर आंदोलन का नेतृत्व किया बल्कि क्रांतिकारियों को संरक्षण देकर अंग्रेजी सरकार के दमन का दोहरा प्रहार भी झेलते रहे। आजादी पाने के लिए देश में दो प्रमुख रास्ते बन गए थे। एक रास्ता गांधी की अहिंसा और सत्याग्रह की ओर जाता था तो दूसरा भगतसिंह की सशस्त्र क्रांति की ओर। बिहार की महिलाएं दोनों रास्तों की भागीदार बनीं। हजारों–हजार महिलाओं ने शहादत दी तब जाकर देश ने आजादी पाई है। क्रांति मार्ग पर चलने का ही नतीजा था कि क्रांतिकारी तेवर की महिला 'बहुरिया रामस्वरूप देवी' के घर को अंग्रेजों ने आग के हवाले कर दिया था।

बिहार के सारण क्षेत्र में अपनी क्रांतिकारी तेवर से अंग्रेजी शासन को चौंकाने वाली बहुरिया रामस्वरूप देवी वह महिला थीं जिन्होंने अपनी क्रांतिकारी मिजाज से सारण क्षेत्र में स्वतंत्रता–संग्राम की अगुआई की। उस निडर और बहादुर महिला ने न तो कभी स्वयं को अंग्रेजों के समक्ष झुकने दिया न ही उनसे डरकर अपने प्रण से पीछे हटी। आजादी के लक्ष्य को पाने के लिए दृढ़ता से लगी रहीं। उनमें अन्याय के विरुद्ध लड़ने का साहस और देशभक्ति की भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी। उनका संघर्ष राज–पाट में हिस्सेदारी के लिए नहीं था। वह आतातायी अंग्रेजी राज से मुक्ति के लिए दृढ़ संकल्पित थीं और इसके लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार थीं। उन्होंने अगस्त क्रांति के दौरान 18 अगस्त 1942 को छपरा के मढौरा थाने पर तिरंगा फहराकर असीम शौर्य का परिचय दिया था। जीवनदायिनी गंगा जिस धरती को सिंचित करती हो वहां की फसलें और नस्लें दोनों कमाल करती हैं। शायद यही कारण रहा है कि पर्दे में रहने वाली महिलाएं जब घरों से निकलीं तो गंगा का ओज और वेग लिए निकलीं। रूढ़िवादी पितृसत्तात्मक ताकतें भी उनकी धारा को मोड़ नहीं पायीं।

बहुरिया का जन्म भागलपुर जिले के कहलगांव थानांतर्गत मुहान गांव में हुआ था। पिता भूपनारायण सिंह भागलपुर जिले के जमींदार थे। बहुरिया का बचपन तो जमींदारी ठाठ–बाट में बीता लेकिन बड़ी होने पर उन्होंने अपने लिए क्रांति का कठिन मार्ग

चुना। उन्हें अंग्रेजी, उर्दू और हिन्दी भाषाओं की प्रारंभिक शिक्षा दी गयी थी। पिता अपनी पुत्री को शिक्षित करना चाहते थे इसलिए उन्होंने बहुरिया को आगे भी पढ़ाया–लिखाया। उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और व्यावहारिक विषयों की शिक्षा में भी निपुण हुईं। बाल विवाह के उस दौर में रामस्वरूप देवी का विवाह नौ वर्ष की आयु में छपरा स्थित अमनौर के हरिमाधव प्रसाद से हुआ। पिता के घर की ही तरह पति का परिवार भी सम्पन्न माना जाता था। बहुरिया के आजाद खयाल पति हरिमाधव बाबू देशभक्त निकले, वे आजादी के आंदोलनों में निरंतर सक्रिय रहते थे। ससुराल में बाकी लोग महिलाओं के लिए परंपरागत पर्देदारी को उचित मानने वाले थे। ससुराल में पति के प्रगतिशील विचार व व्यक्तित्व ने बहुरिया जी को सहज बनाया। ऐसा माना जाता है कि वह बचपन से ही क्रांतिकारियों की टोली में रहती थीं और उनके कामों में हाथ बंटाती थीं। उन्होंने क्रांतिकारी साहित्य भी पढ़ रखा था। शादी के पश्चात वह पति के साथ भी हर सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने लगी थीं।

ब्रिटिश गुलामी के खिलाफ भारत में कई महत्वपूर्ण आंदोलन हुए, उन आंदोलनों में महिलाएं सक्रिय रूप से अपना योगदान दे रही थीं। बहुरिया रामस्वरूप देवी ने ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध हुए तीन महत्वपूर्ण आंदोलनों में भाग लिया। उन्होंने सन 1921 के सविनय अवज्ञा आंदोलन, 1931 के नमक सत्याग्रह और 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया था। 1921 के सविनय

सात नौजवानों की एक टोली हाथों में तिरंगा लिए पटना के सचिवालय से यूनियन जैक का झंडा उतारकर तिरंगा फहराने को जब आगे बढ़ी तो अंग्रेज अपने क्रूरतम रूप में सामने आये। बौखलायी अंग्रेजी सेना ने सीधे नौजवानों के सीने पर गोलियां दागी। एक–एक कर सातों नौजवानों ने बलिबेदी पर चढ़कर शहादत दी। इस घटना ने पूरे बिहार की जनता को भाव विह्वल किया। चारो ओर असंतोष की लहर दौड़ गयी।

अवज्ञा आंदोलन में रामस्वरूप देवी ने अपनी साहस और चतुराई का परचम लहराया। ऐसा माना जाता है कि बिहार के पूर्वी इलाके से लेकर पश्चिमी इलाके तक कई क्रांतिकारी दलों के साथ उनका संबंध था। वे गुप्त रूप से क्रांतिकारियों की मदद करती थीं व उन्हें संरक्षण देती थीं। इस आंदोलन में वह खुलकर सामने आयीं और अंग्रेजी शासन को भारत से उखाड़ फेंकने के लिए सत्याग्रह में शामिल हो गईं। उन्होंने गांव–गांव जाकर युवकों व महिलाओं के बीच राष्ट्रीय चेतना की चिंगारी भड़काई। इस अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने के दौरान उन्हें बंदी बनाकर भागलपुर जेल में डाला गया था। बाद में जब उन्हें रिहा किया गया तब वे और अधिक जोश के साथ आंदोलनों में सक्रिय हो गईं।

1921 ई. में गया जिले में अखिल भारतीय नारी कांग्रेस अधिवेशन का आयोजन किया गया था। बहुरिया के मजबूत इरादों व कुशलता से लोग पहले ही प्रभावित थे, उन्हें इस सभा के संचालन की जिम्मेदारी दी गयी। उन्होंने अधिवेशन में उत्तेजक भाषण दिए और लोगों को अंग्रेजों के विरुद्ध एकजुट होने को कहा। भारत की औरतों के लिए बहुरिया का संदेश था, "मर्दों की गुलामी से मुक्त होने के लिए यह आवश्यक नहीं कि उद्दंडता से काम लें। अपने कर्तव्य को पहचान कर आगे बढ़ो। यह मत भूलो कि तुम नारी हो और ममतामयी मां हो। हां! नारी व मां की आड़ में सुरक्षा ओढ़कर बेकार मत बैठो। एक पहिये की गाड़ी कितना रास्ता तय करेगी? दूसरा पहिया उसमें जुड़ना ही चाहिए। वह इतने स्वस्थ रूप में जुड़े कि जरा–सा भार पड़ने पर चरमरा न जाए।" बहुरिया के ये शब्द महिलाओं में ऊर्जा भर रहे थे और अंग्रेज सिपाहियों के दिलों में खौफ। एक महिला से खौफ खाने का ही मंजर था कि अधिवेशन के बाद उन्हें तीक्ष्ण व भड़काऊ भाषण देने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारियां बहुरिया को कभी डरा नहीं सकीं न ही उन्हें उनके लक्ष्य से डिगाने में सफल हुईं। वे छपरा जिले में लगातार सक्रिय रहीं। अंग्रेजों के विरुद्ध होने वाले आंदोलनों में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से शामिल रहीं।

1930 के नमक सत्याग्रह आंदोलन के वक्त वे अपने जिले में एक प्रभावशाली महिला के रूप में उभरीं। यह वह समय था जब सम्पूर्ण भारत में गांधी के नेतृत्व में चल रहे नमक सत्याग्रह ने जन जागरण की लहर पैदा कर दी थी। महात्मा गांधी ने दांडी से सत्याग्रह की शुरुआत की थी और वह सत्याग्रह दक्षिण से शुरू होकर पूरे उत्तर भारत में फैलने लगा था। अनेक सत्याग्रहियों पर लाठी बरसाई जा रही थी, उन्हें जेलों में बंद किया जा रहा था। आंदोलनकारियों व नमक कानून भंग करने वालों को बंदी बनाया जा रहा था। इस क्रांति की लहर में क्रांतिकारी तेवर वाली बहुरिया का पीछे रहना मुश्किल था। वे पति के साथ नमक सत्याग्रह में शामिल हुईं। इस आंदोलन में उनके पति हरिमाधव प्रसाद की गिरफ्तारी हुई। पति की गिरफ्तारी ने उन्हें आक्रोशित किया और उनके सब्र का बांध तोड़ दिया। अब बहुरिया गांवों में घूम–घूमकर लोगों को आजादी की लड़ाई में अंग्रेजों के खिलाफ एकजुट होने को कहने लगीं। उन्होंने महिलाओं को आह्वान किया और कहा 'उठो, जागो मेरी बहनों। जब देश पर संकट आ पड़ा हो तो हमें घर के भीतर रहना शोभा नहीं देता।' बहुरिया के इन प्रयासों और खिलाफत से अंग्रेजी सरकार घबराने लगी थी, अतः उसने बहुरिया को भी 1 जनवरी 1931 को जेल में डाल दिया। जब बहुरिया को गिरफ्तार करके भागलपुर सेंट्रल जेल ले जाया जा रहा था तब एक ऐसी घटना घटी जिसे इस बात का सबूत माना जाना चाहिए कि रामस्वरूप देवी का व्यक्तित्व कितना विराट हो चुका था। उनके कृत्यों की गहरी छाप जनता के मन पर थी।

आशारानी व्होरा ने अपनी पुस्तक 'महिलाएं और स्वराज्य' में लिखा है कि रामस्वरूप देवी को गिरफ्तार कर के जिस गाड़ी से जेल ले जाया जा रहा था, जनता उसके आगे लेट गयी और गाड़ी को रोक लिया। अंग्रेजी सिपाहियों की बहुत कोशिश के बाद भी जब जनता हटने को तैयार न हुई तो उनके अफसर ने भीड़ को कुचलकर गाड़ी निकाल लेने का आदेश दिया। अब स्थिति इतनी गंभीर हो गयी थी कि बहुरिया जी से चुप न रहा गया। उन्होंने उस अंग्रेज अफसर से चीखकर पूछा, क्या मेरी इच्छा के बिना आप मुझे एक कदम भी आगे ले जा सकते हो? जब अंग्रेजी अफसर ने कोई जवाब नहीं दिया और निरुत्तर खड़े रहे तब उस दृढ़ संकल्पित महिला ने जनता का आह्वान किया, "मेरे वीर भाइयों, यह कैसी वीरता दिखा रहे हैं आप? यह वीरता नहीं नादानी है। सोचो तो, स्वर्ग से बढ़कर हमारी मातृभूमि आज गैरों के कब्जे में है। उसे छुड़ाने के लिए हजारों–लाखों नश्वर शरीरों के बलिदान की जरूरत है। यह मेरी गिरफ्तारी तो बहुत मामूली–सी बात है। जाइये आपलोग भी आजादी की बलिबेदी पर न्योछावर होने के लिए तैयार रहिए।" बहुरिया जी के कहने पर लोग उठकर एक तरफ खड़े हो गए। श्रद्धा से लोगों का माथा झुक गया और बहुरिया को लेकर गाड़ी आगे बढ़ गई। उनकी गिरफ्तारी से लोगों में गहरा क्षोभ था, लेकिन अच्छी बात यह हुई की इसबार उन्हें अधिक दिन तक जेल में नहीं रहना पड़ा। गांधी–इरविन समझौते के तहत अन्य कैदियों के साथ उन्हें भी रिहा कर दिया गया।

छपरा क्रांतिकारियों की धरती रही है। यहां के महिला–पुरुष भगत सिंह की क्रांतिकारी विरासत के उत्तराधिकारी रहे हैं। यही कारण रहा कि रामस्वरूप देवी बलिदान की बातें इतनी सहजता के साथ कहा करती थीं। उन्होंने मानो अपनी जान हथेली पर लेकर चलना मंजूर कर लिया था। 1937 ई. में बहुरिया जी के

पति हरिमाधव प्रसाद की मृत्यु हृदयाघात से हो गयी। पति की मृत्यु उनके लिए सिर्फ सुहाग का जाना नहीं था बल्कि उन्होंने अपना सबसे करीबी साथी को खोया था। पति की मृत्यु का दुःख असहनीय तो था, लेकिन इस दुःख को बहुरिया ने कभी स्वयं पर हावी नहीं होने दिया। क्योंकि वह जानती थीं की उन्होंने जो रास्ता चुना है वह बलिदानों की मांग करती है। उस वीरांगना को अभी अपने जीवन के मुख्य लक्ष्य को प्राप्त करना बाकी था। उन्होंने अपना एकमात्र लक्ष्य निर्धारित कर रखा था– दासता से मुक्ति।

1942 का वर्ष भारतीय इतिहास में अगस्त क्रांति के नाम से मशहूर है। यह वह साल था जब भारत की सम्पूर्ण ताकत अंग्रेजों के विरुद्ध एकजुट हो गई थी और विद्रोह अपने उच्चतम स्तर तक जा पंहुचा था। न सिर्फ पुरुष बल्कि देश की महिलाएं, बड़े–बूढ़े, बच्चे, छात्र–नौजवान आदि ने ठान लिया था कि अब स्वराज्य लेकर ही मानेंगे। 1942 ई. के भारत छोड़ो आंदोलन में 'करो या मरो' के नारे के साथ पूरे देश में एक ज्वाला भभक उठी थी। बिहार में इसकी लपटें बहुत ऊंची उठी। लोगों ने भारत को आजाद कराने के लिए कुछ भी करने को ठान लिया था।

09 अगस्त 1942 ई. को लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में पटना की सड़कों पर हजारों छात्र–नौजवान सर पर कफन बांधकर निकल पड़े। बहुरिया रामस्वरूप देवी छात्र–नौजवानों के उस जुलूस में शामिल हुईं और इन्कलाब जिन्दाबाद, वन्दे मातरम, भारत माता की जय आदि नारे लगाते हुए आगे बढ़ीं। बिहार के घर–घर से निकले उन वीर सपूतों को डराना और उनका हौसला तोड़ना अंग्रेजों के लिए एक चुनौती हो गयी थी।

सात नौजवानों की एक टोली हाथों में तिरंगा लिए पटना के सचिवालय से यूनियन जैक का झंडा उतारकर तिरंगा फहराने को जब आगे बढ़ी तो अंग्रेज अपने क्रूरतम रूप में सामने आये बौखलायी अंग्रेजी सेना ने सीधे नौजवानों के सीने पर गोलियां दागी। एक–एक कर सातों नौजवानों ने बलिबेदी पर चढ़कर शहादत दी। इस घटना ने पूरे बिहार की जनता को भाव विह्वल किया। चारो ओर असंतोष की लहर दौड़ गयी। लोगों ने आर–पार की लड़ाई के लिए कमर कस ली। बहुरिया उन सात शहीदों की मौत का बदला लेने की ठान चुकी थीं। इस घटना के बाद वे आरा, छपरा, बलिया आदि जिलों में लोगों के बीच जाकर क्रांति की चिंगारी सुलगाने लगीं। छपरा जिले में क्रांति की मशाल लेकर वह अगली पंक्ति में खड़ी हो गयीं। 18 अगस्त 1942 ई. का दिन था। रामस्वरूप देवी ने अपने हाथों से छपरा जिले के मढौरा थाने पर तिरंगा फहरा दिया। तिरंगा फहराने के बाद निकट स्थित उद्योग परिसर के बाहर हो रही जनसभा में शिरकत किया। वहां वह जनसभा को संबोधित करने लगीं कि अंग्रेजी पुलिस दल वहां आ पहुंचा और बिना बात किये ही सभा में मौजूद स्त्री–पुरुष, बच्चे–बूढ़े सब पर गोलियां चलाने लगी। हथियारों से लैस विदेशी सिपाहियों ने अंधाधुंध गोलियों की वर्षा की। लोग भागकर आस–पास के खेतों में छिपने लगे, जो न भाग सके वे मारे गए। लेकिन बहुरिया मैदान में डंटी रहीं तभी गोलियों की बौछार से पेड़ की एक डाल टूटकर गिरी। लोगों ने जाना बहुरिया को गोली लग गयी। इस भ्रम ने लोगों के खून में उबाल भर दिया। देखते–ही–देखते फसलों में छिपे हजारों लोग बाहर निकल आये। क्रोध में तिलमिलाये लोगों ने जो कुछ ईंट–पत्थर मिला उससे गोरे सिपाहियों पर टूट पड़े। क्रुद्ध भीड़ ने सात गोरे सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया शेष को मैदान से भगाकर पटना में हुए सात शहीदों की शहादत का बदला लिया। मारे गए सिपा. हियों की लाशों को तुरंत उठाकर पत्थरों से बांधकर लोगा. ं ने नारायणी नदी में डूबा दिया। प्रकृति ने भी क्रूर अंग्रेजा. ं के विरुद्ध भारतीयों का साथ दिया। उस दिन खूब वर्षा हुई जिससे खून के सभी धब्बे मिट गए। सारे सबूत नष्ट कर दिये गए थे जिस कारण मुकदमा नहीं चल सका। बदला लेने के लिए अंग्रेजों का दमन चक्र शुरू हुआ।

22 अगस्त 1942 को अंग्रेजों द्वारा बहुरिया जी के घर में आग लगा दी गयी। उनके सभी सामान जला दिए गए। पूरे गांव में अंग्रेजी सिपाहियों ने डेरा डाल दिया। दिन भर वे घरों, खेतों और बागों में बहुरिया को ढूंढते रहते थे पर उन सिपा. हियों को बहुरिया कहीं नहीं मिलीं, क्योंकि जनता अपनी जान पर खेलकर भी उनकी रक्षा के प्रति कटिबद्ध थीं। अंग्रेजी सत्ता ने कांग्रेस पर दबाव बनाना शुरू किया। कांग्रेस का गुप्त संदेश पाकर बहुरिया समर्पण के लिए सामने आ गयीं। उनपर मुकदमे चलाकर उन्हें लम्बी सजा काटने के लिए भागलपुर जेल में भेज दिया गया।

आखिरकार 15 अगस्त 1947 ई. का वह दिन भी आया जिसके लिए जाने कितने देशप्रेमियों ने अपने लहू बहाये, शहादतें दीं और जेलों की यातनाएं सही।

आजादी की खबर सुन बहुरिया ने अपने स्वप्न को साकार पाया। जेल से बाहर आने के बाद वे फिर से राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय हो गयीं। आजाद भारत के 1952 में हुए प्रथम आम चुनाव में रामस्वरूप देवी विधानसभा के लिए खड़ी हुईं। इस चुनाव में उनके खिलाफ छः प्रतिद्वंद्वियों ने चुनाव लड़ा। स्थिति यह हुई की छहों प्रतिद्वंद्वियों की जमानतें जब्त हो गयीं। बहुरिया के व्यक्तित्व ने जो छाप जनता के दिलों में छोड़ी थी उसी का नतीजा था कि वे अपार बहुमत से जीतकर विधानसभा की सदस्य हुईं।

उन्नत भारत का स्वप्न देखने वाली और उसके लिए काम करने वाली उस महान वीरांगना को दुर्भाग्यवश आगे देश सेवा का अवसर प्राप्त न हो सका। वह चुनाव तो जीत गईं, लेकिन प्रकृ ति के नियमों के अनुसार उन्हें जीवन से हार जाना पड़ा। संघर्ष के रास्तों पर चलकर कभी उनका हौसला नहीं टूटा लेकिन नश्वर शरीर कमजोर पड़ता गया। चुनाव के बाद वह बीमार पड़ गयीं और 29 नवम्बर 1953 की सुबह बिहार की उस सिंहनी के प्राण छूट गए।

(लेखिका पटना की हैं। संप्रति हैदराबाद से पी–एच.डी कर रही हैं।)

■

अरुण नारायण

मुक्ति के मालाकार : नक्षत्र मालाकार

जो पुल बनाएंगे
वे अनिवार्यतः
पीछे रह जाएंगे
सेनाएं हो जाएंगी पार
मारे जाएंगे रावण
जयी होंगे राम
जो निर्माता रहे
इतिहास में बंदर कहलाएंगे।'

(अज्ञेय)

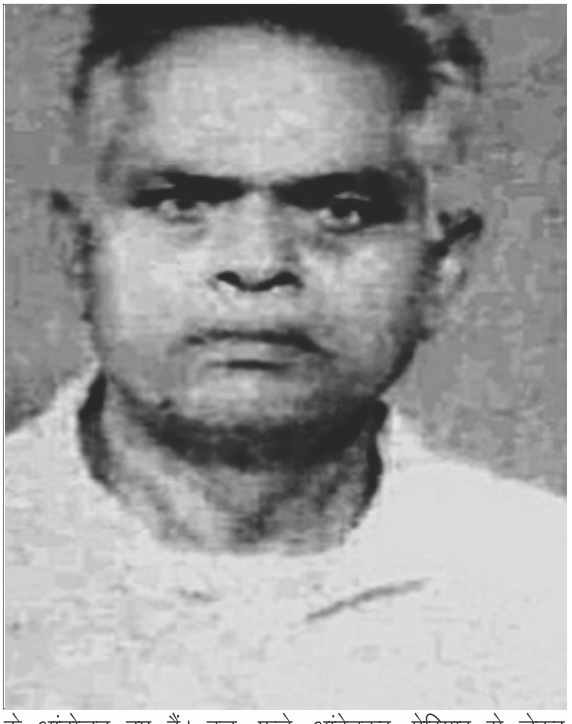

भारतीय मिथकों के आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम (?) राम का कविता के मंच से किया गया यह पुनर्पाठ भले ही मिथकों को संबोधित हो, लेकिन यह पाठ हमारे आधुनिक इतिहास लेखन के पूरे नस्लीय, जातीय और लैंगिक विभेद को भी बड़ी सूक्ष्मता से उद्घाटित करता है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम, उसके इतिहास लेखन और उसकी पूरी वैचारिकी पर इस तरह के पूर्वाग्रह की गहरी छाया आप देख सकते हैं। बिहार का दृष्टांत लें तो यह खाई स्पष्ट तौर पर आजादी के आंदोलन के दौर के इतिहास लेखन से लेकर आज तक के लेखन में नजर आती है। इसकी जीवंत मिसाल नक्षत्र मालाकार हैं। बिहार में साम्राज्यवाद और सामंतवाद विरोध के वे सबसे बड़े प्रतीक रहे हैं। इतने बड़े प्रतीक कि अंग्रेजी शासन में 9 बार जेल गए और सामंती, प्रतिगामी शक्तियों के विरोध के कारण आजादी के बाद कांग्रेसी शासन में भी आजीवन कारावास की सजा पाई। लेकिन यह विडम्बनापूर्ण सच है कि उन पर न तो कोई किताब है, न ढंग के कोई शोध ही।

एक दौर था जब 20वीं सदी के तीसरे दशक से छठे दशक तक उत्तर बिहार में बस नक्षत्र थे और उनकी तलाशी में पूर्णिया के गांवों–कस्बों के चप्पे–चप्पे की तलाशी लेती पुलिस। उन्हें गिरफ्तार करने के लिए कटिहार में बी.एम.पी.बटालियन–7 की स्थापना की गई। बलूची सिपाहियों का दस्ता आया। सरकार ने पूरे उत्तर बिहार के सिनेमा हॉलों में उन्हें गिरफ्तार करवाने के इश्तेहार छपवाए। 25 हजार रुपए इनाम की घोषणा की गई। लोग मार खा लेते, पुलिस की यातना सह लेते, लेकिन नक्षत्र का सुराग नहीं बतलाते। यह थी उनकी मास अपील। वहां के वह 'रॉबिनहुड' थे– रेणु के कालजयी उपन्यास 'मैला आंचल' के चरित्तर कर्मकार की तरह। उन्होंने दर्जनों लूट–पाट पुलिस और स्थानीय सामंतों के साथ की और उसका उपयोग मजलूम गरीब जनता के हित के लिए किया। पुलिस अफसर, मुखबिर, फसल की चोरी करने वाले लुटेरे और बलात्कारी सामंतों, महाजनों के नाक–कान काटे और उत्तर बिहार की जनता को अभयदान प्रदान किया। सामाजिक गैर बराबरी को मिटाने के लिए अपने यहां कई तरह के आंदोलन हुए हैं। बुद्ध, फुले, आंबेडकर, पेरियार से लेकर नक्सलवाद और मंडल उभार तक हम इसका विस्तार देख सकते हैं। नक्षत्र मालाकार इतिहास की इसी धारा का प्रतिनिधित्व करने वाले अपनी तरह के विलक्षण समाज सुधारक थे। अपराधी की नाक–कान काटना–यह उनका दंड विधान था, जो सीधे–सीधे समाज से जुड़ता था। इसके पीछे उनकी धारणा रही होगी कि दंड पानेवाला समाज में निंदा और उपहास का पात्र बनने के लोक–लाज से अनैतिक काम करने से डरेगा, गरीबों के उत्पीड़न से बाज आएगा। सामाजिक बहिष्कार का इससे बड़ा दंड दूसरा नहीं हो सकता। नवजागरण पर काम करनेवालों के लिए नक्षत्र का यह प्रयोग एक रिसर्च का दिलचस्प विषय हो सकता है। अपनी अप्रकाशित डायरी में नक्षत्र ने उस दौर के जो अनुभव साझा किये हैं उसमें उनके जीवन संघर्ष का पूरा परिवेश अपनी पूरी रंगत के साथ उपस्थित है। यहां वे विस्तार से चिन्हित करते हैं कि अंग्रेजी अफसरों और सामंतों का संयुक्त मोर्चा उन्हें और उनके साथियों को बदनाम करने के लिए किस तरह लूट–पाट और बलात्कार की घटना को अंजाम दे रहा था। नक्षत्र कांग्रेस, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट तीनों पार्टियों में अग्रिम पंक्ति के कार्यकर्ता रहे थे इसलिए ऐसी बदनामियों से भी बेदाग निकले।

नक्षत्र मालाकार का जन्म तत्कालीन पूर्णिया जिले के समेली गांव में सन् 1905 ई. में एक गरीब माली परिवार में हुआ। आज वह

स्थान कटिहार जिले की सीमा में है। समेली बिहार का अपनी तरह का अकेला वह विलक्षण गांव हैं, जहां 3 नामचीन शख्सियतें जन्मीं, तीनों ही अपने–अपने क्षेत्र के नामवर हुए। पहले हुए नक्षत्र मालाकार। अपने 82 साल के जीवन का हर लम्हा उन्होंने सामंती शक्तियों के विरुद्ध लोहा लेते बिताया। दूसरे हुए अनूपलाल मंडल जिन्हें बिहार का प्रेमचंद कहा गया। जिनके 'मीमांसा' उपन्यास पर 1940 के दशक में किशोर साहू ने 'बहूरानी' फिल्म बनाई। तीसरे हुए डॉ. जयनारायण मंडल, जिन्होंने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अपना परचम लहराया, जातीय विषमता को टारगेट करती तल्ख कविताएं, व्यंग्य, कहानियां और नाटक लिखे। कर्पूरी ठाकुर ने उन्हें बिहार विधान परिषद का सदस्य बनाया, लेकिन जल्द ही वे मृत्यु को प्राप्त रहागए। ये तीनों ही अपने समय, अपने क्षेत्र के नाम. चीन लोग थे। लेकिन बिहार की नई पीढ़ी इन्हें नहीं जानती। इनके किये काम का कोई विधिवत संरक्षण नहीं किया गया। यह सब इसलिए नहीं हुआ कि ये तीनों ही बिहार के पिछड़े समुदाय माली, केवट जाति के थे। यह जबावदेही बिहार के अकादमिक जगत की थी कि वह इस तरह के लोगों का लिखा, किया संजा. ेता और उसका प्रकाशन करता। लेकिन बिहार के अकादमिक जगत में जिन जाति समूहों का कब्जा है उसके रहते यह सब संभव नहीं। इतिहास उनका लिखा जाता है जिन्होंने कुर्बानियां दीं, स्थापित व्यवस्था और सत्ता को चुनौती दी, लेकिन बिहार में अभी भी श्रीकृष्ण सिंह ही निर्माता के रूप में अकादमिक जगत की पुस्तकों के सिरमौर हैं।

नक्षत्र के जन्म के अब तक चार वर्ष सामने आये हैं। कहीं 1903, कहीं, 1905, कहीं 1909 तो कहीं 1910। उनके जन्म को लेकर इस तरह की मतभिन्नता स्वयं उनके घर परिवार में भी कम नहीं है। निचले पायदान में जन्मीं जातियों में कुंडली बनाने का विधान नहीं होने और अशिक्षा के कारण भी लोगों को उनके जन्मदिन याद नहीं रहते थे। नक्षत्र की भी वास्तविक जन्म तिथि अनुमान पर ही तय की गई होगी। उनके घर बरारी में उनकी ही पहल पर स्थापित 'भगवती महाविद्यालय' के रजिस्टर में उनका जन्म 9 अक्टूबर, 1905 दर्ज है। यह प्रमाण स्वयं नक्षत्र जी ने ही कॉलेज को उपलब्ध करवाया था। लोग बतलाते हैं कि 27 सितंबर, 1987 को उनकी मौत हुई। उस समय वे 82 वर्ष के थे। इस दृष्टि से भी 1905 का वर्ष ही उनके जन्म का वास्तविक वर्ष प्रमाणित होता है। उनके परिजन इसके पक्ष में एक और सबूत वासुदेव प्रसाद मंडल का पेश करते हैं, जिनकी जन्म तिथि 1903 है। नक्षत्र उनसे 2 साल छोटे थे। दोनों घनिष्ठ थे, लंबे अरसे तक एक साथ काम किया। रुपौली थाना के दारोगा को खौलते कड़ाह में डालने में नक्षत्र के साथ यही वासुदेव मंडल शामिल थे। बाद के दिनों में वह जनता पार्टी की सरकार में शिक्षा राज्य मंत्री बने।

नक्षत्र के पिता लब्बू माली अत्यंत गरीब गृहस्थ थे। उनकी दो शादियां हुईं। पहली पत्नी सरस्वती से दो पुत्र–जगदेव और द्वारिका का जन्म हुआ। पत्नी के निधन के बाद दूसरी पत्नी लक्ष्मी देवी से दो पुत्र–बौद्ध नारायण और नक्षत्र एवं तीन पुत्री– तेतरी देवी, सत्यभामा एवं विद्योतमा का जन्म हुआ। उन्होंने अपने पैतृक गांव समेली से पलायन कर बरारी को अपना ठिकाना बनाया और वहीं घर बना लिया। यह स्थान भी कटिहार जिला में ही है, लेकिन समेली की अपेक्षा ज्यादा उन्नत और गांव से अलग एक ब्लॉक का दर्जा रखने वाला। उन्होंने अपने पुश्तैनी धंधे को अपने परिवार के पोषण का जरिया बनाया। उनका परिवार मौर, पटमौरी बनाता, मंदिरों में फूल माला पहुंचता, मांगलिक अवसरों पर लोगों के घर काम करता और थोड़ी बहुत फूल की खेती भी। इसी सीमित और छोटे रोजगार में उनका परिवार पला–बढ़ा। अपने बड़े भाई बौद्ध नारायण मालाकार की प्रेरणा से नक्षत्र मालाकार ने महात्मा गांधी के नमक सत्याग्रह में हिस्सा लिया। अंग्रेजों ने इसे रोकने के लिए उत्तरी बिहार में कई जगह नाकेबंदी की, लेकिन सत्याग्रही नहीं माने। इसी में प्रमुख रूप से भागीदार होने के कारण इन्हें गिरफ्तार किया गया। अपने 42 साथियों के साथ इन्हें 6 माह की सजा हुई और आरा जेल भेज दिया गया। वहां का जेलर कैदियों को ढंग का खाना नहीं देता था और उनके साथ दुव्यवहार करता था। इन्होंने वहां अनशन किया और उसकी मोनोपोली को खत्म किया। नक्षत्र को दूसरी बार जेल की सजा तब हुई जब वे विदेशी कपड़ों के बहिष्कार अभियान में कटिहार में काम कर रहे थे। वे विदेशी कपड़ों की दुकान के आगे सो जाते, ग्राहकों को दुकान पर नहीं आने का कारण बतलाते। इनकी इस गतिविधि से त्रस्त दुकानदार ने थाने को सूचित किया तो नक्षत्र 6 माह के लिए गिरफ्तार कर गुलजारबाग पटना कैम्प जेल भेजे गए। एक बार पुनः शराब पिकेटिंग के अपराध में इन्हें 6 माह की सजा मुकर्रर की गई। सजा की अवधि पूरी हुई तो घर नहीं लौटकर सीधे टीकापट्टी आश्रम आये और यहीं रहकर एक सच्चे गांधीवादी कांग्रेसी कार्यकर्ता के रंग में रंग गए। उन दिनों बिहार में गांधी के रचनात्मक कामों और जन सेवा के प्रशिक्षण के कई केंद्र खुले। मुजफ्फरपुर में नक्षत्र ने बाजाब्ता 1 महीने की चरखा ट्रेनिंग ली। 3 महीने तक मोतिहारी में प्रशिक्षण प्राप्त किया और तांत बनाने में अव्वल आये।

अंग्रेजी हुकूमत को खत्म करने के लिए कोशी अंचल में कांग्रेस के नेतृत्व में जो आंदोलन चले उनकी बागडोर वहां के सामंती, वर्चस्ववादी समूह के हाथ में थी। अंग्रेजी साम्राज्य के विरोध के पीछे उनके अपने हित काम कर रहे थे। उन्हें यकीन था कि अंग्रेजी सल्तनत के खात्मे के बाद जो नई सत्ता संरचना खड़ी होगी उसकी बागडोर उनके हाथ में होगी। इसीलिए आप देखेंगे कि कोशी अंचल में गांधीवाद का प्रभाव तो सघन था, लेकिन इसकी कमान जिन लोगों के हाथ में थी, वे वहां की स्थानीय जनता को बेतरह पीस रहे थे। उनकी बहू–बेटियां सुरक्षित नहीं थीं। उनके इसी प्रतिगामी चरित्र ने नक्षत्र को उनसे अलग रास्ते जाने की परिस्थितियां पैदा कीं। वहां नमक सत्याग्रह का मुख्य केंद्र टीकापट्टी था, जहां से नक्षत्र की सक्रिय भागीदारी होती है। वैद्यनाथ चौधरी उस इलाके में बड़े कद्दावर नेता थे। वह पूर्णिया में कांग्रेस के संस्थापकों में थे। नक्षत्र ने एक दिन उनके ही छोटे भाई अम्बिका चौधरी द्वारा एक निरीह बुढ़िया का बर्बर उत्पीड़न होते देखा। बुढ़िया की बकरी उनकी फसल में चर गई थी। इसके लिए चौगुनी रकम का अर्थदंड उस पर लगाया गया। नक्षत्र ने इस मामले में हस्तक्षेप किया, तब अर्थदंड थोड़ा कम किया गया,

लेकिन उसे माफी नहीं मिली। उन्होंने वैद्यनाथ चौधरी से जब इस मामले में हस्तक्षेप करने को कहा तो उन्होंने इनकार कर दिया। इस घटना के तत्क्षण बाद कांग्रेस से उनका मोहभंग हुआ और 1936 में उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता ग्रहण कर ली।

सोनपुर में आयोजित 'समर स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' में शामिल हुए। रेणु की मानें तो 'एक डेढ़ महीने का वह शिक्षण–शिविर अपने ढंग का अकेला था।' जयप्रकाश नारायण इसके प्रिंसिपल थे और मीनू मसानी, नरेंद्र देव, अच्युत पटवर्धन, सहजानंद सरस्वती और अशोक मेहता जैसे नेताओं ने लोगों को प्रशिक्षित किया। एक महीने तक चले इस कार्यक्रम में मिडिल से एम.ए तक के छात्रों का प्रवेश लिया गया। नक्षत्र साक्षर भर थे इसलिए यहां उनका प्रवेश निषेध कर दिया गया। इसकी खबर जयप्रकाश को हुई तो वे नक्षत्र से मिले। बहुत प्रभावित हुए और उनका नाम नक्षत्र माली की जगह मालाकार कर दिया।

एक दिन नक्षत्र ने देखा कि शिविर में कार्यकर्ताओं के लिए अलग, और नेताओं के लिए अलग भोजन बन रहा हैं। समाजवादी पार्टी के इस दोहरे चरित्र पर वह भड़क उठे। उन्होंने जेपी से इस दोहरी व्यवस्था का तत्क्षण कारण पूछा। जेपी ने कहा कि यहां नेताओं के लिए अलग और कार्यकर्ताओं के लिए अलग भोजन की व्यवस्था है। उन्होंने दो–टूक शब्दों में कहा– 'अइसन दोरंगी नीति से समाजवाद न अतौ जयप्रकाश जी' और धीरे–धीरे उनका समाजवाद से भी मोहभंग हो गया। हालांकि उस शिविर के बाद उन्हें अपने इलाके में मिल मजदूरों को संगठित करने का दायित्व दिया गया। उन्होंने कटिहार जूट मिल के कर्मचारियों को संगठित किया। मिल मजदूर यूनियन की एक बड़ी सभा अपने बड़े भाई बौद्ध नारायण के साथ मिलकर आयोजित की। इस कारण दोनों को जेल में डाल दिया गया। समेली और टीकापट्टी में उनके हथियार बनाने के कारखाने थे। ऐसा माना जाता है कि नेपाली क्रांति और बंगाल के स्वदेशी आंदोलन से भी उनके गहरे ताल्लुकात रहे। संभव है इन क्रांतिकारियों के साथ उनके गुप्त तरीके से हथियारों के लेन–देन भी उनके होते रहे हों। नेपाल में लोहिया और जेपी के साथ विराट नगर के पास दीवानगंज में क्रांतिकारियों का आजाद दस्ता बना और सशस्त्र क्रांति का निर्णय लिया। उन्हें कुछ हथियार ग्वालियर से भी आते थे। इस तरह के उनके क्रांतिकारी कार्यों में आसपास के हर गांवों में उनके प्रमुख सहयोगी रहे थे। जिनकी मदद से वे गुरिल्ला अंदाज में अपने दुश्मनों से मुठभेड़ करते और अपने अभियान को निरंतर आगे बढ़ाते रहे। 1942 की क्रांति आरंभ हुई तो शीघ्र ही बिहार भी उसके सघन प्रभाव में रंग गया। कटिहार में इस आंदोलन का गहरा असर था। रूपौली थाने को क्रांतिकारियों ने उड़ा दिया जिसमें नक्षत्र सहित 36 क्रांतिकारी नामजद हुए। इस आंदोलन में 6 लोगों की जानें गईं। रूपौली कांड के कई सरकारी गवाह बने। अगर उन्हें रोका नहीं जाता तो उनमें से कइयों को फांसी होती। नक्षत्र ने एक–एक गवाह को समझा–बुझाकर रास्ते पर लाया जो नहीं माने उन्हें मौत की नींद सुला दी।

1947 के आसपास उस इलाके में अकाल की भयावह छाया मंडराने लगी। आम लोग दाने–दाने को मोहताज हो गए। सूदखोरों और व्यापारियों ने अपने बड़े–बड़े बखारों में अनाज छिपा दिया था ताकि महंगी होने पर वे मनमानी कीमतों में बेच सकें। जनता तड़प रही थी और बगल के ढोलबज्जा के ठेके में अनाज सड़ रहा था। नक्षत्र ने पहले दरख्वास्त की। इसपर वे नहीं माने तो अपनी भूखी पीड़ित जनता के साथ उनके अन्न गोदाम को लूट लिया। ढोलबज्जा की इस लूट की घटना ने आसपास के जमींदारों को दशहत में ला दिया। इसके बाद कई जमींदारों की कामत पर हमला बोलकर जमा पड़े अनाजों को गरीबों में वित. रित किया जाने लगा। इस घटना के बाद नक्षत्र सैकड़ों फर्जी मुकदमों में नामजद किए गए। रेणु जी ने इस घटना को लक्षित करते हुए लिखा कि 'उसने पार्टी के लोगों से कहा कि आइए और लोगों को अनाज दिलवाइए। 'हमलोग प्रस्ताव पास करते थे, कुछ करते नहीं थे। वह आदमी बैठा रहनेवाला नहीं था। उसने बखार खुलवाकर अनाज बंटवाना शुरू कर दिया।' (रेणु रचनावली खंडः 4, पेजः 414)

देश आजाद हुआ तो बहुतों में खुशी की लहर थी कि अब सब कुछ ठीक–ठाक हो जाएगा। कुछ लोग ऐसे थे जो इस झूठी आजादी के छद्म को समझ रहे थे। खुद आंबेडकर ने संविधान को पेश करते हुए सामाजिक और आर्थिक गैर बराबरी को चिन्हित किया था। मालाकार की संगठनात्मक ताकत का अहसास कांग्रेस को था इसीलिए उन्हें उनकी ओर से बराबर यह प्रलोभन दिया जाता रहा कि वे कांग्रेस में रहकर काम करें उनकी आर्थिक दिक्कतें हल कर ली जाएंगी। लेकिन उन्होंने सदा इसकी अनदेखी की। जब पूरा घर–परिवार असुरक्षा में जिया, मां, पिता, बड़े भाई और बच्चे इलाज के अभाव में मर गए तब तो वे झुके नहीं, अब क्या खाक झुकते। उनका जनता की मुक्ति में विश्वास इतना प्रबल, इतना पक्का था कि उन्होंने खुद को खतरों की धार पर रखते हुए जनता के हितों से कभी समझौता नहीं किया। बिहार में ऐसी कोई जेल न होगी, जहां उन्होंने अपनी सजा की अवधि न काटी हो।

30 अगस्त, 1952 को उन्हें कदवा के चांदपुर गांव में पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। फर्जी मुकदमे में उन्हें आजीवन कारावास की सजा मुकर्रर हुई। 14 साल की जेल सजा काटने के बाद जब वे दिसंबर, 1966 में बाहर आये तो जनता ने उनका तहे दिल से स्वागत किया। वे कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गए। इसी पार्टी के टिकट पर 1985 में फारबिसगंज से चुनाव लड़े। कांग्रेसी सरजू सिंह से उनकी सीधी टक्कर थी। अंततः धनबल, जनबल पर भारी पड़ा और वे पराजित हो गए। पूर्णिया जिला माकपा की किसान शाखा के अध्यक्ष एवं कटिहार जिला स्वतंत्रता सेनानी के अध्यक्ष पद पर भी उन्होंने अपनी सेवाएं दी। 'अब नहर तोड़ेगे कटिहार के किसान' नामक आंदोलन की अगुआई की।

समाज में पद–दलित लोगों का हित उनका चिरकालिक एजेंडा था। इसी आबादी की मान–मर्यादा के लिए वे आजीवन संघर्ष करते रहे। पूर्णिया में उनके ही प्रयासों से सिपाही और ततमा टोला बसाये गए। रूपौली गांव में मोल बाबू जमींदार द्वारा दान दी गई 14 बीघा जमीन दलित समूह (पासवान) में वितरित हुई।

बखरी और समेली के बीच दरभंगा महाराज की 300 एकड़ जमीन परती पड़ी थी। उसमें 10 गांव के मवेशी चरते थे। कुछ जमींदारों ने उसकी बंदोबस्ती चुपके से अपने नाम करवा ली और उसमें खरीफसल बो दी गई। नक्षत्र ने अपनी 300 गरीब मजदूर सेना के साथ फसल में मवेशी घुसा दिया और अंततः वह जमीन पूर्व की भांति लोगों के उपयोग में आने लगी। लोग बतलाते हैं कि रूस से उन्हें चिट्ठी आई थी। वहां की सरकार उन्हें सम्मानित करना चाहती थी, लेकिन पूर्णरूप से शिक्षित नहीं होने के कारण वे वहां नहीं जा सके। उन्होंने जनता से 90 एकड़ जमीन इकट्ठा की और अपने गांव बरारी में भगवती मंदिर महाविद्यालय की स्थापना की। महाविद्यालय की रजिस्ट्री के केवाला में अध्यक्ष के रूप में उन्हीं का नाम है। अंतिम समय में नक्षत्र ने एक और दुर्लभ काम किये। यह लोक जीवन से जुड़ा अपनी तरह का अनूठा काम था जो उन्होंने लोगों की संगठित श्रम शक्ति से पूरा किया। पूर्णिया नगर से 7 किलोमीटर दक्षिण हरदा गांव के निकट हजारों एकड़ में फैली हुई थी भुवना झील। नक्षत्र ने अंग्रेजी हुकूमत के समय से ही यह दरख्वास्त की थी कि इस झील से एक नहर निकालकर कटिहार के निकट कारी कोशी में मिला दी जाए तो हजारों एकड़ जमीन पानी से बाहर आ जाएगी। सेमापुर एवं कटिहार के बीच प्रसिद्ध यह भुवना झील पौन मील चौड़ी और 18 मील लंबी झील थी। उन्होंने कांग्रेसी सरकार से भी अपील की, लेकिन जब कोई नतीजा नहीं निक. ाला तो गरीब किसान और मजदूरों को एकजुट कर 1 मई, 1967 को कुदाल डलिया लेकर भुवना झील की खुदाई में हाथ लगा दिया। इस पर बड़े जमींदारों ने उन पर मुकदमा चलाया।

जिला पदाधिकारी, आरक्षी अधीक्षक पुलिस बल के साथ झील की खुदाई रोकने आये किंतु किसान मजदूरों की संगठित चट्टानी एकता का वे बाल बांका नहीं कर पाए। जल्द ही भुवना झील से नहर कटिहार के निकट कारी कोशी में मिला दी गई। जल स्रोत तीव्र वेग के साथ कारी कोशी के साथ मिलकर भवानीपुर गांव के निकट गंगा नदी में मिल गया। इससे जो जमीन बाहर निकली मालाकार जी ने वह किसान मजदूरों के बीच बांट दी। वह नहर नदी के रूप में आज भी वहां के लोकमानस में मालाकार नदी के रूप में जानी जाती है।

27 सितंबर, 1987 को अपने घर पर ही किडनी फेल हो जाने के कारण इलाज के अभाव में उनकी मौत हो गई। अपने दौर के इतने बड़े लिविंग लीजेंड का पूरा घर परिवार समाज की सेवा में इसी तरह अपने को होम करता हुआ एक साधारण गरीब की तरह इलाज के अभाव में मरा। जातिवादी अकादमिक बिरादरी इतिहास में उनकी एक दूसरी मौत का जश्न मना रही है उनकी आपराधिक उपेक्षा करके। लेकिन जन–जन का नायक हमारा चिरंतन विद्रोही कभी नहीं मरता! वह इतिहास के रंगमंच पर एक बार फिर अवतरित हो रहा है– आकाश में हमेशा चमकते ध्रुव नक्षत्र की तरह!

■

डॉ. मोहम्मद आरिफ

न होते बतख तो गांधी युग भी न होता

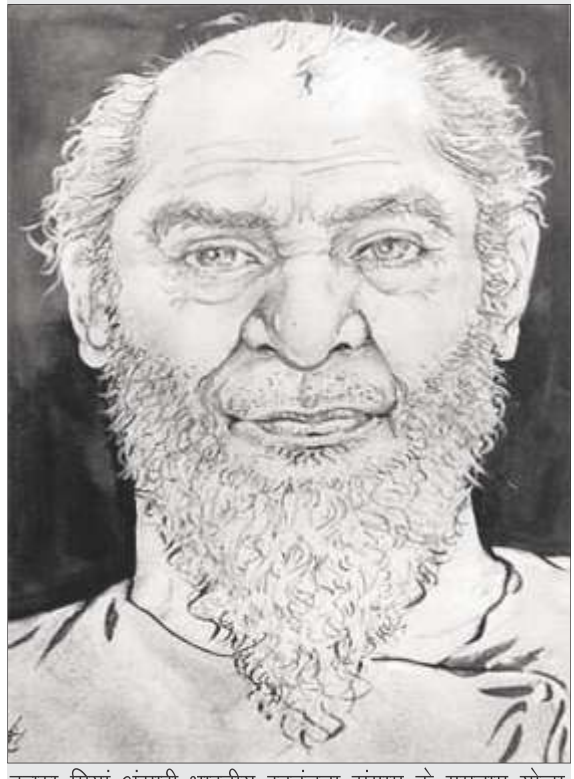

बत्तख मियां अंसारी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के गुमनाम योद्धा भारत की आजादी के आंदोलन की वैश्विक पहचान के पीछे महात्मा गांधी का महत्वपूर्ण योगदान है। 1917 में स्थानीय किसानों की समस्या को देखने समझने के लिए गांधी चंपारण आये। गांधी का चंपारण प्रवास उनके जीवन कर्म में मील का पत्थर साबित हुआ पर इसी दौरान अंग्रेजों ने गांधी जी के कत्ल की साजिश रची थीं और बतख मियां नामक एक खानसामा ने अपनी जान जोखिम में डाल कर उन्हें बचा लिया। यह ऐतिहा. सिक प्रकरण इतिहास के पन्नों में कहीं खो गया। इतिहासक. ारों से लेकर चंपारण की गाथा सुनाने वालों को भी यह नाम मुश्किल से याद रहता है। अंग्रेजों का इरादा एक मुस्लिम खानसामा को मोहरा बनाकर पूरे देश को साम्प्रदायिक दंगों की भट्ठी में झोंक देने का था।

बत्तख मियां, जैसा नाम से ही जाहिर है, पसमांदा थे। मोतिहारी नील कोठी में खानसामा का काम करते थे। यह 1917 की बात है। उन दिनों गांधी नील किसानों की समस्या समझने के लिए चंपारण के इलाके में थे। यह वही 1917 का समय था, जब रो. हतास (तब शाहाबाद) जिले के गांवों में साम्प्रदायिक उन्माद में डूबे सामन्ती ताकतों ने हाथी–घोड़ों पर सवार होकर मुस्लिम बस्तियों पर हमले किए थे। आगे चलकर, कई अन्य स्थानों पर भी साम्प्रदायिक दंगों का फैलाव हुआ। बहार हुसैनाबादी (1864–1929) ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि

निलहे किसानों की दुर्दशा से व्यथित बतख मियां को गांधी में उम्मीद की किरण नजर आ रही थी। उनकी अंतरात्मा को इरविन का यह आदेश कबूल नहीं हुआ। उन्होंने दूध का ग्लास देते हुए राजेन्द्र प्रसाद को बता दिया कि इसमें जहर मिला हुआ है आप गांधीजी को सावधान कर दें। देशभक्त बतख अंसारी ने अंग्रेजों का दमन और अत्याचार झेलने का संकल्प किया और गांधी जी को अंग्रेजों की इस साजिश से आगाह कर दिया। कहते हैं, दूध का गिलास जमीन पर उलट दिया गया और एक बिल्ली उसे चाटकर मौत की नींद सो गई। गांधी की जान तो बच गई लेकिन, बतख मियां और उनके परिवार को बाद में इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी। गांधी जी के जाने के बाद अंग्रेजों ने न केवल बतख मियां को बेरहमी से पीटा और सलाखों के पीछे डाला, बल्कि उनके छोटे से घर को ध्वस्त कर कब्रिस्तान बना दिया।

एक रोज गांधी जी मोतिहारी कोठी के मैनेजर इरविन से मिलने पहुँच गए। उन दिनों भले ही गांधी जी की देश के अन्य बड़े नेताओं जैसी ख्याति नहीं थी पर चंपारण के लोगों की निगाह में वे किसी मसीहा से कम न थे। नील किसानों को लगता था कि वे उनके इलाके से निलहे अंग्रेजो को भगाकर ही दम लेंगे और यह बात नील प्लांटरों को खटकती थी और वे हर हाल में गाँधी को चंपारण से भगाना चाहते थे।

वार्ता के उद्देश्य से नील के खेतों के तत्कालीन अंग्रेज मैनेजर इरविन ने मोतिहारी में उन्हें रात्रिभोज पर आमंत्रित किया। तब बतख मियां इरविन के रसोईया हुआ करते थे। इरविन ने गांधी की हत्या के लिए बतख मियां को जहर मिला दूध का गिलास देने का आदेश दिया। अंग्रेजों की योजना थी कि बतख अंसारी के हाथों गांधी जी को दूध में जहर देकर मार दिया जाए और ऐसा न करने पर बतख मिंयां को जान से हाथ धोने की धमकी भी दी गई।

निलहे किसानों की दुर्दशा से व्यथित बतख मियां को गांधी में उम्मीद की किरण नजर आ रही थी। उनकी अंतरात्मा को इरविन का यह आदेश कबूल नहीं हुआ। उन्होंने दूध का ग्लास देते हुए राजेन्द्र प्रसाद को बता दिया कि इसमें जहर मिला हुआ है आप गांधीजी को सावधान कर दें।

देशभक्त बतख अंसारी ने अंग्रेजों का दमन और अत्याचार झेलने का संकल्प किया और गांधी जी को अंग्रेजों की इस साजिश से आगाह कर दिया। कहते हैं, दूध का गिलास जमीन पर उलट दिया गया और एक बिल्ली उसे चाटकर मौत की नींद सो गई।

गांधी की जान तो बच गई लेकिन, बतख मियां और उनके परिवार को बाद में इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी। गांधी जी के जाने के बाद अंग्रेजों ने न केवल बतख मियां को बेरहमी से पीटा और सलाखों के पीछे डाला, बल्कि उनके छोटे से घर को ध्वस्त कर कब्रिस्तान बना दिया।

गांधी की मौत या जन्म पर लोग उनको याद करते हैं साथ ही गोडसे को भी हत्यारे के रूप में याद किया जाता है, मगर बतख मियां लगभग गुमनाम ही रहे।

इस लोकोक्ति के बावजूद कि 'बचाने वाला मारने वाले से बड़ा होता है'। मारने वाले का नाम हर किसी को याद है, बचाने वाले को कम लोग ही जानते हैं।

देश की आजादी के बाद 1950 में मोतिहारी यात्रा के क्रम में देश के पहले राष्ट्रपति बने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने बतख मियां की खोज–खबर ली और प्रशासन को उन्हें कुछ एकड़ जमीन आवंटित करने का आदेश दिया।

बतख मियां की लाख भागदौड़ के बावजूद प्रशासनिक सुस्ती के कारण वह जमीन उन्हें नहीं मिल सकी। निर्धनता की हालत में ही 1957 में उन्होंने दम तोड़ दिया। राजेन्द्र प्रसाद ने 1950 से अपनी मृत्यु तक बिहार सरकार को गांधी की जान बचाने वाले इस देशभक्त को अंग्रेजों द्वारा छीनी गई जमीन लौटाने और उनके बेटे मुहम्मद जान अंसारी समेत पूरे परिवार को आर्थिक संरक्षण देने का निर्देश दिया था। वह बतख मियां की देशभक्ति से अभिभूत थे। बाद में, राष्ट्रपति भवन में बतौर खास मेहमान उनके बेटे को परिवार सहित रखा गया था। चंपारण में उनकी स्मृति अब मोतिहारी रेलवे स्टेशन पर बतख मियां द्वार के रूप में ही सुरक्षित हैं। इतिहास ने स्वतंत्रता संग्राम के गुमनाम योद्धा बत्तख मियां अंसारी को भुला दिया।

1990 में, राज्य अल्पसंख्यक आयोग ने पहली बार इस पूरे प्रकरण को उजागर किया और प्रमाण सहित बतख मियां के वंशजों को न्याय दिलाने की कारगर पहल की। तब कहीं मीडिया का ध्यान इस ओर गया, और देश–भर के समाचार–माध्यमों में उनका नाम उछला। बाद में, बिहार विधान परिषद् के तब के सभापति जाबिर हुसेन के प्रभावकारी हस्तक्षेप से बत्तख मिंयां के गांव में उनका स्मारक बना तथा उनकी याद में जिला मुख्यालय में 'संग्रहालय' का निर्माण किया गया तथा कुछ जमीन के साथ ही तमाम वायदे किये गए जो अभी पूरे होने बाकी हैं। उनके नाम पर स्थापित 'संग्रहालय' पर अर्ध–सैनिक बलों का कब्जा रहा है।

एक सवाल अक्सर दिमाग को परेशान करता है। जब यह घटना हुई, देश की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कई लोग इसके गवाह बने, लेकिन बतख अंसारी की देशभक्ति की यह दास्तान गुमनामी के पर्दे में दबी रह गई। आखरि ऐसा क्यों !

गांधी को मारने वाला गोडसे याद है और आज उसकी संतानें फल–फूल रही हैं, लेकिन बचाने वाले बत्तख मियां को हमने न केवल भूला दिया बल्कि आज उनकी तहरीक ही संकटग्रस्त है। गांधी न होते, तो शायद देश की आजादी का स्वरूप कुछ दूसरा होता और अगर बत्तख मियां न होते तो गांधी युग भी न होता!

(लेखक जाने माने इतिहासकार और सामाजिक कार्यकर्ता हैं) ■

सत्यनारायण प्रसाद यादव

सूरज नारायण सिंह : एक निर्भीक क्रांतिकारी

सम्पूर्ण क्रांति के जनक लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नाम से संसार बखूबी परिचित है, मगर जिस शख्स ने अगस्त क्रांति में उनके सफर को आसान बनाया, जिनकी शहादत की आग ने संपूर्ण क्रांति आंदोलन को गति प्रदान की, जिनके खून का हरेक कतरा देश और समाज को समर्पित रहा, जो आजाद भारत के रांची में मजदूरों के हक की लड़ाई लड़ते हुए पुलिस की बर्बर लाठी की मार से शहीद हो गए, जिनकी शहादत को हम भूलते जा रहे हैं, स्वतंत्रता संग्राम के उस महान सेनानी का नाम है– शहीद सूरज नारायण सिंह।

सूरज नारायण सिंह का जन्म मधुबनी जिलान्तर्गत पंडौल प्रखंड के नरपतिनगर गांव में 17 मई 1907 ई. को हुआ था। इनके पिता गंगा सिंह एक संभ्रांत जमींदार थे। सूरज नारायण सिंह बचपन से ही आंदोलनी, समाजवादी और क्रांतिकारी स्वभाव के थे। अपने इसी स्वभाव के कारण मात्र चौदह वर्ष की अवस्था में असहयोग आंदोलन में भाग लेने के कारण इनका नाम स्कूल से काट दिया गया। आगे की शिक्षा के लिए 1921 में उन्हें काशी विद्यापीठ वाराणसी भेजा गया। इसी बीच वे मुजफ्फरपुर के क्रांतिकारी योगेन्द्र शुक्ल जो भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त आदि लोगों को ट्रेनिंग देते थे, के संपर्क में आये। भगत सिंह की फांसी की सजा का इनके मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। सब कुछ छोड़ ये क्रांतिकारी गतिविधियों में लिप्त हो गये, सैकड़ों लोगों को अपने साथ जोड़ते गए। 1926 में ये पटना में युवा संघ के सदस्य बन गए। 1928 में दरभंगा में युवा संगठनकर्ता बने। हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक आर्मी के सदस्य बने। 1930 में गांधी जी के सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेकर छह माह की सजा काटी। 1931 में अखिल भारतीय कांग्रेस के करांची अधिवेशन में दरभंगा जिले का प्रतिनिधित्व किया। सकरी स्थित खादी भंडार के पास लूट व सरकारी डाक खजाने को लूटने में इनकी अहम भूमिका रही थी। तिरहुत षड्यंत्र एवं हाजीपुर में डकैती में ये गिरफ्तार हुए। अपनी इन गतिविधियों के कारण वे दर्जनों मामलों में नामित हुए। इसी बीच इनका परिचय जयप्रकाश नारायण से हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय सेनाओं की भर्ती के खिलाफ उन्होंने आंदोलन के अपराध में जयप्रकाश के साथ गिरफ्तार हुए एवं हजारीबाग जेल भेज दिये गए। वहां भी आंदोलन नहीं थमा, कारागारीय कुव्यवस्था के कारण इक्कीस दिनों तक अनशन किया। 1942 में गांधी जी के आह्वान पर भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान इन लोगों ने ठान लिया कि अब जेल में नहीं रहेंगे। योजना तैयार हो गई । 09 नवंबर, दिवाली की रात जयप्रकाश नारायण, रामनंदन मिश्र, योगेन्द्र शुक्ल, गुलाबचंद गुप्ता, शालिग्राम सिंह के साथ सूरज नारायण सिंह दीवार फांदकर भाग गए। इन लोगों की योजना इतनी तगड़ी थी कि इन सभी लोगों

के भागने के नौ घंटे के बाद भी जेल प्रशासन को भनक तक नहीं लगी कि ये लोग भाग चुके हैं। कहा जाता है जेपी एवं रामनंदन मिश्र को सूरज बाबू अपने कंधे पर बिठाकर दीवार चढ़े थे, दूसरी तरफ कूदते वक्त जयप्रकाश जी का पांव फट गया। उन्हें भागने में दिक्कत हो रही थी। बारी–बारी से साथी उन्हें कंधे पर बिठाकर चले जा रहे थे। लगभग 45 घंटो तक जंगलों में चलने के बाद इन लोगों को एक गांव में पहुंचने के बाद भोजन नसीब हुआ। इधर सरकार ने इन लोगों पर इनाम की घोषणा कर दी। गया पहुंचने के बाद ये लोग दो गुट में बंट गए। जेपी, शालिग्राम सिंह और रामनंदन मिश्र बनारस निकल गए बाकी योगेन्द्र शुक्ल, गुलाबचंद एवं सूरज नारायण सिंह मिथिला की तरफ निकल पड़े। योगेन्द्र शुक्ल मुजफ्फरपुर में चार राजनीतिक कैदियों को जेल से भगाने के बाद 07 दिसम्बर को दुर्भाग्यवश पहचाने जाने के कारण गिरफ्तार कर लिए गए। गुलाबचंद और सूरज नारायण सिंह दरभंगा आ गए। दिल्ली, मुम्बई और दक्षिण प्रवास के बाद जेपी गिरफ्तारी से बचने के लिए भागकर नेपाल चले गए। सूरज नारायण सिंह वहां भी अपने साथियों को लेकर पहुंचे। अंग्रेजी शासन से गुरिल्ला पद्धति से लड़ने के लिए आजाद दस्ता का गठन हुआ। बिहार के अन्य तीन जगहों पर भी आजाद दस्ता की टीम बनाई गई।

मई 1943 में पुलिस को इन लोगों की नेपाल में छुपने की

भनक लग गई । उसने जेपी, लोहिया, श्याम नंदन, अबध बिहारी सिंह, रसिकलाल यादव, कार्तिक प्रसाद, वैद्यनाथ झा सहित इनके अन्य साथियों को गिरफ्तार कर लिया और हनुमान नगर थाने पर ले आये। सूरज नारायण सिंह को इस बात की खबर लगी, जेपी के रक्षक बनकर वह फिर उन्हें भगाने आ गए। करीब 50 सशस्त्र क्रांतिकारियों के साथ थाने पर हमला कर सभी गिरफ्तारों को छुड़ा लिया। समय बीतता गया। अनेकों घटनाक्रम में वे गिरफ्तार हुए और जेल गए। स्वतंत्रता के पश्चात सूरज नारायण सिंह राजनीति में आये। सोशलिस्ट पार्टी के टिकट से उन्होंने मधुबनी का नेतृत्व किया। उनके जोरदार भाषणों से सभाएं गुंजायमान होने लगीं। स्वाधीनता के बाद उन्होंने अपना अधिकतम समय किसान और मजदूरों के आंदोलन को दिया। हिन्द मजदूर सभा के अध्यक्ष के तौर पर वह मजदूरों के हक के लिए लड़ते रहे।

वर्ष था 1973, सूरज नारायण सिंह के नेतृत्व में रांची की उषा मार्टिन कम्पनी के मजदूरों ने अपनी वाजिब मांगो को लेकर हड़ताल कर दी। आंदोलन को दबाने के लिए मौजूदा सरकार ने कम्पनी के साथ मिलकर साजिश रची मगर सूरज बाबू की लोकप्रियता के कारण वे इसमें असफल रहे। 14 अप्रैल को मजदूरों ने आमरण अनशन आरम्भ कर दिया। मजबूर होकर कम्पनी प्रबंधन वार्ता के लिए तैयार हुआ। सूरज बाबू वार्ता में गए तभी मजदूरों पर पुलिस और गुंडों ने अचानक हमला कर दिया। पता चलते ही सूरज बाबू दौड़ पड़े, पुलिस ने उन्हें बुरी तरह पीटा। चोटें इतनी गहरी थी कि अस्पताल में ही इनकी मौत हो गई। 21 अप्रैल को उनकी मौत के बाद उनके दाह संस्कार में जयप्रकाश नारायण उनके शव से लिपट कर फूट–फूट कर रोये। जेपी के मुंह से निकला ये शब्द आज मेरा दांया हाथ चला गया, इतना अकेला मैंने अपनी पत्नी प्रभावती की मौत के बाद भी महसूस नहीं किया था, से उनकी आत्मीयता एवं परिस्थिति को भांपा जा सकता था। सूरज बाबू की मौत एवं मधुबनी–कांड (सूरज बाबू की मृत्यु के बाद मधुबनी उपचुनाव में उनकी पत्नी चन्द्रकला देवी की हार और अब्दुल गफूर का जीतना) ने 1974 के सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन में उत्प्रेरक का काम किया।

एक निर्भीक, क्रांतिकारी, समाजवादी देशभक्त सूरज नारायण सिंह स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाने से लेकर किसान एवं मजदूरों के हित एवं स्वाभिमान की रक्षा के लिए जीवनपर्यंत समर्पित रहे। उन्होंने जिस आजाद भारत का सपना देखा था वह अभी कोसों दूर है। उन्होंने समतामूलक समाज का सपना देखा था। जहां आर्थिक गैर बराबरी के लिए कोई स्थान ना हो। उनका मानना था कि जब तक ग्रामीण जनता की आर्थिक, सामाजिक स्थिति में सुधार नहीं होगा, उन्हें विकास का उचित अवसर नहीं मिल सकेगा। सामाजिक न्याय के प्रति समर्पित हम अपने इस पुरखे के जीवन संघर्ष और विचारों को कितना आत्मसात कर पाये हैं, ये तो हम सबकी आत्मा ही जानती है।

(लेखक ललित नारायण मिथिला वि.वि. में मैथिली के शोधार्थी हैं।)

■

पार्टी गतिविधियां

डॉ. दिनेश पाल

महंगाई और सांप्रदायिकता के खिलाफ महागठबंधन का प्रतिरोध मार्च

देश आजादी की 75वीं वर्षगांठ को 'अमृत महोत्सव' के रूप में मना रहा है। हर घर तिरंगा का अभियान चलाया जा रहा है। लोगों का भरपूर समर्थन मिल रहा है और मिलना भी चाहिए, लेकिन 75 वर्षों में हमने क्या खोया, क्या पाया और आगे क्या करना है, इस पर बात करने से सरकार व सत्ताधारी दल के नेता कतरा रहे हैं। अमृत महोत्सव की आड़ में सरकार जरूरी मुद्दों से मुंह मोड़ना चाह रही है, जो कि विपक्षी पार्टियां होने नहीं देंगीं। विपक्ष का कर्तव्य भी है कि जनसरोकार के सवालों को सरकार के समक्ष मजबूती से रखें। 18 जुलाई से लेकर 12 अगस्त तक चलने वाले मानसून सत्र में विपक्ष की बहुत ही जद्दोजहद के बाद महंगाई के मुद्दे पर सरकार चर्चा करने को तैयार हुई। चर्चा के दौरान झारखंड के हजारीबाग से भाजपा सांसद व पूर्व केंद्रीय मंत्री जयंत सिन्हा ने सदन में विपक्ष से कहा कि, 'आप महंगाई खोज रहे हैं, लेकिन महंगाई मिल नहीं रही है, क्योंकि महंगाई कहीं है ही नहीं'।

यह कितना बेतुका और हास्यास्पद बयान है, आप खुद ही समझ सकते हैं। देश में महंगाई और बेरोजगारी चरम पर है। बुनियादी चीजों की कीमतें आसमान छू रही हैं। खाने–पीने, पढ़ने–लिखने एवं दवा आदि तक पर सरकार ने जीएसटी लगा दी है। जनता त्रस्त है। डीजल, पेट्रोल एवं घरेलू गैस के दामों में बेतहाशा वृद्धि हुई है। डॉलर के मुकाबले रुपया गिरकर अस्सी को छू लिया है। अग्निपथ जैसी योजना लाकर सेना में मात्र चार साल के लिए युवाओं को बहाल किया जा रहा है। केंद्र सरकार की तानाशाही ऐसी कि जो कोई सवाल कर रहा है, उसे केंद्रीय जांच एजेंसियों के माध्यम से डराया–धमकाया जा रहा है। आये दिन विपरीत विचारधारा के नेता, बुद्धिजीवी, पत्रकार एवं एक्टिविस्ट आदि जेल में ठूंसे जा रहे हैं। इस भयावह स्थिति में भी राष्ट्रीय जनता दल अपने सहयोगी पार्टियों के साथ राज्य तथा केंद्र की एनडीए सरकार से बेखौफ व तनकर सवाल करने को तैयार है, क्योंकि राजद प्रमुख लालू प्रसाद यादव का साफ कहना है कि, मिट जाएंगे पर झुकेंगे नहीं।

बिहार में महागठबंधन ने पूरे बिहार में उपर्युक्त समस्याओं के खिलाफ 'मण्डल दिवस' के दिन अर्थात 07 अगस्त, 2022 को प्रतिरोध मार्च निकालने का निर्णय लिया। कार्यक्रम शुरू होने से पहले पूर्व मुख्यमंत्री राबड़ी देवी ने बेरोजगारी हटाओ रथ को हरी झण्डी दिखाकर रवाना किया। राजधानी पटना में दानापुर के सगुना मोड़ से डाकबंगला तक तेजस्वी यादव के नेतृत्व में महागठबंधन द्वारा निकाले गए प्रतिरोध मार्च में महागठबंधन के नेताओं तथा कार्यकर्ताओं के साथ–साथ आम जनता, विशेष

प्रतिरोध मार्च करते गठबंधन दल के नेतागण।

महंगाई के खिलाफ राजद की महिलाओं का प्रदर्शन।

कर युवाओं में भी जोश व उत्साह देखने को मिला। बिहार के सभी जिला मुख्यालयों में महागठबंधन की सभी पार्टियों ने सामुहिक रूप से जनसरोकार के मुद्दों पर प्रतिरोध मार्च निकाल कर जनता को जागरूक और सरकार को सचेत करने का काम किया। डाकबंगला चौराहे पर जुलूस को सम्बोधित करते हुए तेजस्वी यादव ने कहा कि, 'यह प्रतिरोध मार्च केंद्र सरकार के खिलाफ मील का पत्थर साबित होगा। एनडीए की सरकार जिस तरह से काम कर रही है उसे जनता पसन्द नहीं कर रही है। जनता की आवाज को हम सड़क से सदन तक मजबूती से उठाएंगे। हम आमलोगों को न्याय दिलाने के लिए संकल्पित हैं। केन्द्र सरकार कितना भी जोर लगा ले, हम झुकने वाले नहीं हैं। हम उनकी साजिशों के खिलाफ और मजबूती से संघर्ष करेंगे। राजद के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष शिवानंद तिवारी ने प्रतिरोध मार्च का एक वीडियो फेसबुक पर साझा करते हुए लिखा कि, 'प्रतिरोध मार्च अप्रत्याशित रूप से सफल रहा। ईमानदारी की बात है कि मुझे ऐसी भागीदारी की उम्मीद नहीं थी। स्वाभाविक है कि राजद के सामाजिक आधार वाले समूह के लोग तो थे ही, लेकिन हर तबके के लोगों की इस मार्च में शिरकत थी। महंगाई ने मध्य और निम्न मध्य वर्ग के जीवन को दूभर बना दिया है। सम्भवतः आज के मार्च को उन्होंने अपना विरोध का जरिया बना लिया था। 'उन्होंने आगे लिखा कि,' सत्ताधारी गठबंधन प्रतिरोध मार्च को असफल और जनता द्वारा नकार दिये जाने का बयान देने की औपचारिकता को तो निभाएगा ही, लेकिन सच्चाई तो यह है कि आज के कार्यक्रम की सफलता ने उनको रात में करवट बदलने पर तो जरूर मजबूर कर दिया है।' प्रतिरोध मार्च में मुख्य रूप से तेजस्वी यादव, तेजप्रताप यादव, प्रदेश अध्यक्ष जगदानंद सिंह, शिवानंद तिवारी, श्याम रजक, महबूब आलम, गोपाल रविदास, रामचंद्र पूर्वे, रीतलाल यादव, शकील अहमद खान, सुनील सिंह, संदीप सौरभ, भाई वीरेंद्र एवं अमरजीत कुशवाहा आदि शामिल थे।

राजद, भाकपा–माले, भाकपा एवं माकपा के प्रतिरोध मार्च का समर्थन करते हुए कांग्रेस भी अपने सैकड़ों कार्यकर्ताओं के साथ प्रदेश अध्यक्ष डॉ. मदन मोहन झा के नेतृत्व में पटना के सड़कों पर उतरी। डॉ. झा ने कहा कि, 'केन्द्र सरकार निरंकुश होकर आम जनता को परेशान कर रही है। देश में जब से भाजपा सत्ता में आई है, तब से वह अपने पूंजीपति मित्रों के हिसाब से नियम–कानून बना रही है। विदित हो कि 05 अगस्त, 2022 को कांग्रेस के सांसदों ने राष्ट्रीय कार्यकारी अध्यक्ष सोनिया गांधी के नेतृत्व में संसद से राष्ट्रपति भवन तक महंगाई और बेरोजगारी के खिलाफ प्रतिरोध मार्च किया था। हालांकि पुलिस ने उन्हें विजय चौक पर ही रोक लिया और राहुल गांधी समेत कई कांग्रेस के सांसदों तथा कार्यकर्ताओं को हिरासत में ले लिया गया।

चिलचिलाती धूप में पसीने से तरबतर महागठबंधन के कार्यकर्ता बिहार के सभी जिला मुख्यालयों में पार्टी झण्डा लिए नारा लगाते दिखे। सारण जिला के मुख्यालय छपरा में सड़कों पर लोग लाल–हरा झण्डा लिए पूरे उत्साह के साथ नारा लगाते दिखे। सांढ़ा ढाल से राजद जिला अध्यक्ष सुनील राय, परसा विधायक छोटेलाल एवं गरखा विधायक सुरेन्द्र राम अपने सैकड़ों कार्यकर्ताओं के साथ नारेबाजी करते हुए नगरपालिका चौक स्थित नगर–निगम प्रांगण में पहुंचें। कोपा से सैकड़ों कार्यकर्ताओं के साथ मांझी विधायक डॉ. सत्येन्द्र यादव नगर–निगम प्रांगण में पहुँचे। उसी वक्त मढ़ौरा विधायक जितेन्द्र कुमार राय भी अपने समर्थकों के संग नारा लगाते हुए नगर–निगम प्रांगण में पहुंच गए। पूर्व विद्यायक रणधीर सिंह, पूर्व विद्यायक मुद्रिका राय, पूर्व प्रत्याशी सिपाही महतो आदि नेता भी का भी अपने समर्थकों संग

'रोको महंगी बांधो दाम, नहीं तो होगी नींद हराम' की हुंकार के साथ नेताओं व कार्यकर्ताओं का प्रतिरोध मार्च।

जुटान हुआ। भगवान बाजार स्थित अपने आवास से राजद नेता डॉ. प्रीतम यादव भी अपने समर्थकों संग पूरे जोश के साथ नारा लगाते हुए नगर–निगम प्रांगण में पहुंचे। राजद जिलाध्यक्ष सुनील राय, भाकपा–माले सचिव विजेंद्र मिश्र, माकपा के जिला सचिव बटेश्वर प्रसाद एवं भाकपा के जिला सचिव रामबाबू सिंह के संयुक्त नेतृत्व में 'प्रतिरोध मार्च' हजारों लोगों के साथ नगर–निगम परिसर से निकला और नगरपालिका चौक, सलेमपुर, मोना चौक, साहेबगंज एवं थाना चौक होते हुए पुनः परिसर में पहुंचा। प्रतिरोध मार्च में 'रोको महंगी बांधो दाम, नहीं तो होगी नींद हराम', 'अग्निपथ वापस लो', 'किसानों का कर्ज माफ करो', 'तानाशाही नहीं चलेगी', 'हिंदू मुस्लिम शिक्ख ईसाई, आपस में हैं भाई–भाई आदि नारों की अनुगूंज रही। मोना चौक से साहेबगंज जाते समय तो मैंने देखा कि सब्जी–फल बेचने वाले और किराना दुकान वाले सरकार को एक सुर में महंगाई के लिए गाली दिए जा रहे हैं, उनका गुस्सा देखकर लग रहा था कि जनता में कितना आक्रोश है और यह प्रतिरोध मार्च सिर्फ बिहार में ही नहीं बल्कि पूरे भारत में महंगाई और बेरोजगारी के खिलाफ जनजागरण का काम करेगा। अपने सम्बोधन में नेतृत्वकर्ताओं ने कहा कि केन्द्र व राज्य की एनडीए सरकार की अदूरदर्शी व जनविरोधी नीतियों के चलते देश में कमरतोड़ महंगाई व बेरोजगारी बढ़ रही है, जिसके चलते देश की जनता कराह रही है। पेट्रोल, डीजल, रसोई गैस, सरसों तेल, रिफाइन एवं जीवन रक्षक दवाओं के दामों में बेतहाशा बढ़ोतरी से गरीब, बेबस व लाचार लोग बेमौत मरने को मजबूर हैं। केंद्र सरकार ने बच्चों के पेंसिल, कागज, कलम, किताब एवं किसानों के खाद आदि को महंगा कर अपना गरीब विरोधी चेहरा उजागर किया है।

छपरा की तरह ही पूरे दमखम के साथ बिहार के लगभग हर जिला मुख्यालय में महागठबंधन ने प्रतिरोध मार्च निकाला। महागठबंधन के लगभग सभी विधायक अपने–अपने जिला के मुख्यालय के प्रतिरोध मार्च में शामिल हुए। मेरे गृह जिला कैमूर के तीनों राजद विधायक (भरत बिंद, सुधाकर सिंह एवं संगीता कुमार) भी भभुआ के प्रतिरोध मार्च में महागठबंधन के नेताओं तथा कार्यकर्ताओं के साथ शरीक हुए। जुलूस को को संबोधित करते हुए महागठबंधन के नेताओं ने कैमूर जिला को सूखाग्रस्त क्षेत्र घोषित करने, सरकारी नलकूपों को चालू करने, कृषि कार्य के लिए 24 घंटे निःशुल्क बिजली देने, महंगाई पर रोक लगाने, डीजल पेट्रोल गैस की बढ़ी कीमतें वापस लेने, दूध–दही पर लगे जीएसटी वापस लेने, कर्ज से लगातार हो रही आत्महत्याओं पर रोक लगाने, गरीबों का राशन कार्ड रद्द करने, कार्डधारियों को गेहूं की आपूर्ति की गारंटी किये जाने से दाल, मसाले और रोजमर्रे की तमाम चीजों की व्यवस्था करने, मनरेगा में मची लूट पर रोक लगाने, मनरेगा में 200 दिन काम और न्यूनतम 600 मजदूरी का प्रावधान करने, शहरों में भी मनरेगा की तर्ज पर शहरी रोजगार गारंटी योजना लागू करने, दलित गरीबों के बिजली बिल माफ करने, पंजाब दिल्ली की तर्ज पर सभी गरीबों को 200 यूनिट मुफ्त बिजली देने, अग्निपथ योजना वापस कर पुरानी स्थाई बहाली लागू करने, अग्निपथ योजना के खिलाफ आंदोलन में गिरफ्तार सभी आंदोलनकारियों को रिहा करने, निजी क्षेत्र में आरक्षण लागू करने, केंद्र और राज्य के सभी रिक्त पदों को अविलंब भरने आदि की मांग की।

(लेखक राजद अति पिछड़ा प्रकोष्ठ के प्रदेश प्रवक्ता सह मीडिया प्रभारी हैं।)

■

महागठबंधन की नई सरकार का मंत्रिमंडल

मुख्यमंत्री

नीतीश कुमार
(जदयू)
सामान्य प्रशासन, गृह,
मंत्रिमंडल सचिवालय
निगरानी, निर्वाचन और ऐसे सभी
विभाग जो किसी को आवंटित नहीं हैं।

उप मुख्यमंत्री

तेजस्वी प्रसाद यादव
(राजद)
स्वास्थ्य पथ निर्माण
नगर विकास एवं
आवास व ग्रामीण कार्य विभाग।

राजद

1. **तेजप्रताप यादव**
   पर्यावरण, वन एवं जलवायु
   परिवर्तन विभाग
2. **अनिता देवी**
   पिछड़ा–अति पिछड़ा कल्याण विभाग
3. **जितेन्द्र कुमार राय**
   कला–संस्कृति एवं युवा विभाग
4. **आलोक कुमार मेहता**
   राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग
5. **डा. रामानंद यादव**
   खान एवं भूतत्व विभाग
6. **शाहनवाज**
   आपदा प्रबंधन विभाग
7. **मो. इसराइल मंसूरी**
   सूचना प्राद्यौगिकी विभाग
8. **शमीम अहमद**
   गन्ना उद्योग विभाग
9. **सुरेंद्र राम**
   श्रम संसाधन विभाग
10. **सुरेंद्र यादव**
    सहकारिता विभाग
11. **ललित यादव**
    पीएचईडी विभाग
12. **प्रो. चंद्रशेखर**
    शिक्षा विभाग
13. **कुमार सर्वजीत**
    पर्यटन विभाग
14. **समीर कुमार महासेठ**
    उद्योग विभाग
15. **सुधाकर सिंह**
    कृषि विभाग
16. **कार्तिक सिंह**
    विधि विभाग विभाग

जदयू

1. **बिजेंद्र प्रसाद यादव**
   ऊर्जा और योजना
   एवं विकास विभाग
2. **विजय कुमार चौधरी**
   वित्त, वाणिज्य कर
   व संसदीय कार्य विभाग
3. **संजय कुमार झा**
   जल संसाधन सूचना
   एवं जनसंपर्क विभाग
4. **सुनील कुमार**
   मद्य निषेध, उत्पाद, निबंधन विभाग
5. **लेशी सिंह**
   खाद्य एवं उपभोक्ता संरक्षण विभाग
6. **श्रवण कुमार**
   ग्रामीण विकास विभाग
7. **मो.जमा खान**
   अल्पसंख्यक कल्याण विभाग
8. **जयंत राज**
   लघु जल संसाधन विभाग
9. **अशोक चौधरी**
   भवन निर्माण विभाग
10. **मदन सहनी**
    समाज कल्याण विभाग
11. **शीला कुमारी**
    परिवहन विभाग

कांग्रेस

1. **मुरारी प्रसाद गौतम**
   पंचायती राज विभाग
2. **मो. आफाक आलम**
   पशु एवं मत्स्य संसाधन विभाग

हम

1. **संतोष सुमन**
   अनुसूचित जाति–जनजाति
   कल्याण विभाग

निर्दलीय

1. **सुमित कुमार सिंह**
   विज्ञान एवं प्रावैधिकी विभाग

लालू-नीतीश:
साथ-साथ दो चैम्पियन,
भगवा हो गया अस्त।

महागठबंधन सरकार का शपथ ग्रहण:
माननीय मुख्यमंत्री एवं माननीय उप मुख्यमंत्री।

मंत्रिमंडल के राजद सदस्यों की
पूर्व मुख्यमंत्री राबड़ी देवी से औपचारिक मुलाकात।

महागठबंधन सरकार की पहली कैबिनेट की बैठक।

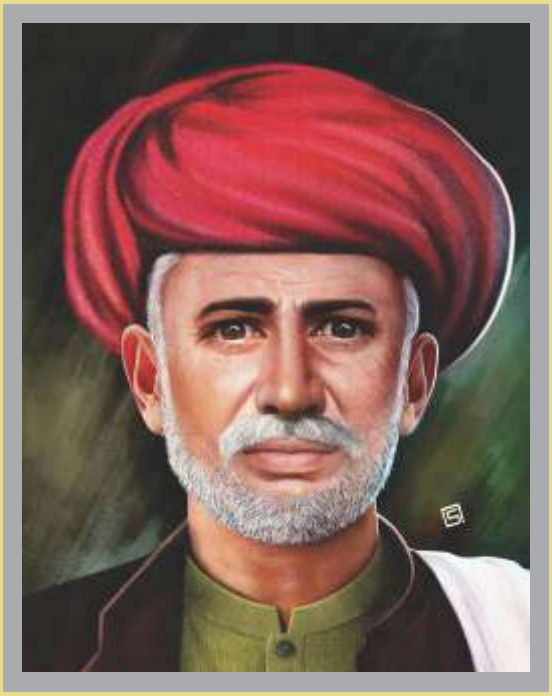

(11 अप्रैल 1827- 28 नवम्बर 1890)

मंदिर का मतलब होता है मानसिक गुलामी का रास्ता। स्कूल का मतलब होता है जीवन में प्रकाश का रास्ता। मंदिर में जब घंटी बजती है तो हमें संदेश देती है कि हम धर्म, अंधविश्वास, पाखंड और मूर्खता की ओर बढ़ रहे हैं। वहीं जब स्कूल की घंटी बजती है तो ये संदेश देती है कि हम तर्कपूर्ण ज्ञान और वैज्ञानिकता की ओर बढ़ रहे हैं। अब तय आपको करना है कि आपको जाना कहां है?

■ *जोतीराव फुले*